प्रसार दूत

कृषि विज्ञान की अग्रणी पत्रिका

जून 2020

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

कृषि प्रौद्योगिकी आकलन एवं स्थानान्तरण केन्द्र
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली–110012

संपादकीय

किसान भाइयो, पावस ऋतु हम सबके लिए जीवन का आधार है। इसका इंतजार न केवल मनुष्यों को होता है, बल्कि संसार के सभी जीव–जंतुओं को होता है। जब सूर्य के प्रकोप से धरती सूख जाती है, जीवन कठिन हो जाता है, पेड़ पौधे सूख जाते हैं, प्राणी त्राहि–त्राहि करते हैं, तो भगवान वरदान के रूप में वर्षा की फुहारें आकर तमाम कष्टों को हर लेती हैं। वर्षा ऋतु का आगमन यह संदेश देता है कि जीवन में दुख और कष्ट जब चरम पर पहुँचते हैं, तो ईश्वर उनके निवारण के लिए ठंडक और राहत जरूर भेजता है।

गत कुछ महीने दुनियाभर के लिए बड़े कष्टदायी रहे। कोविड–19 नामक एक अबूझी आपदा आई और इसने मानव निर्मित तमाम व्यवस्थाओं को तहस नहस कर दिया। सारे आधुनिक कार्य व्यापार थम गए, आर्थिक गतिविधियाँ रूक गईं। ऐसे में कृषि ही अकेला ऐसा कार्य था, जिसे रोकना संभव नहीं था। सबने महसूस किया कि भले कोई अन्य कार्य हो या नहीं, कोई सुविधा मिले या नहीं, लेकिन जीवित रहने के लिए भोजन जरूरी है, और इसके लिए कृषि को चलते रहना होगा। जहाँ एक ओर किसानों ने रबी की फसलों को संभाल लिया, उनकी कटाई की, खरीफ के लिए खेत की तैयारी और बुआई की, वहीं दूसरी ओर सब्जियों, दूध और फलों का उत्पादन और आपूर्ति करना जारी रखा। जबकि इसके लिए सामान्य दिनों की तुलना में किसानों को नुकसान उठाना पड़ा, क्योंकि लॉकडाउन अवधि में परिवहन और विपणन के चौनल बंद थे, जिससे उसे कृषि उत्पादों को उचित बाजार नहीं मिला, वहीं आदानों, जैसे पशु आहार, चारे, मशीनरी, ईंधन महंगे दामों पर उपलब्ध हुए, जिससे उनकी उत्पादन लागत बढ़ गई।

एक ओर जहाँ सरकार ने लॉकडाउन में मरीजों की देखभाल व कानून–व्यवस्था बनाए रखने के लिए स्वास्थ्यकर्मियों और सुरक्षाबलों को कोरोना वारियर्स कहा गया, सम्मान दिया, वहीं किसानों की इनके समकक्ष सराहना नहीं की गई। भले ही यह सायास न हो, लेकिन स्पष्ट है कि हम एक समाज और देश के तौर पर कृषि को वह कृतज्ञता नहीं दे पा रहे हैं, जिसकी वह हकदार है। इसके बावजूद किसान कृषि में संलग्न है, इसका कारण यह है कि वह कृषि को उद्योग धंधे की तरह नहीं लेता, उसमें नफा–नुकसान नहीं सोचता। वह इसे धर्म की तरह लेता है। जमीन से उसका लगाव भावनात्मक होता है, वह उसे खाली नहीं छोड़ सकता, कुछ न कुछ बोता जरूर है। यही कारण है, कि घाटे का सौदा होते हुए भी किसान कृषि से विमुख नहीं हो सकता।

इस वर्ष टिड्डियों के रूप में एक आपदा और देखने को मिली। वैसे तो टिड्डियों का आना हमारे लिए कोई नई घटना नहीं हैं, पर इस वर्ष टिड्डियों का आक्रमण बड़े पैमाने पर हुआ और देश का लगभग एक चौथाई हिस्सा इसकी चपेट में आ गया। इससे निपटने के लिए हमारी तैयारी नाकाफी साबित हुई। हम समय रहते इस समस्या की गंभीरता को समझ नहीं सके, और इसका भारी नुकसान किसानों को उठाना पड़ा। नष्ट फसलें, उजड़े हुए खेत और किसानों की आंखों के आंसू वाली तस्वीरें सामने आ रही हैं। टिड्डियों का आक्रमण इस वर्ष भी जारी रहने की प्रबल संभावना है, यदि उचित रणनीति बनाकर कार्यान्वित न किया गया, यह समस्या भयंकर हो सकती है। ऐसा नहीं है कि इससे निपटने के लिए हमारे पास इसके लिए संसाधन या तकनीकी नहीं है। कमी यह है कि यह समस्या हमारी प्राथमिकता सूची में नहीं है।

जब मेहनतकश मजदूरों का साथ उन महानगरों ने छोड़ दिया, जिन्हें उन्होंने अपने खून पसीने से बनाया था, तो अपने गाँवों की याद आई। यह कृषि ही है, जो आपको भूखा मरने नहीं देगी। हमारे देश का ढांचा इसी प्रकार का है। यहाँ की कृषि में यह ताकत है, जो तमाम प्रतिकूल परिस्थितियों को झेल सकती है, और हम सभी के कष्टों को हर सकती है। हमें इस बात को समझना होगा तभी कृषि सर्वोच्च प्राथमिकता बन पाएगी।

समूचा वैश्विक बाजार केवल एक संकट के कारण आसानी से ढह गया, यह देखते हुए चहुँओर आत्मनिर्भरता की बात की जा रही है। अब हमें भी केवल अपने संसाधनों और जरूरतों को ध्यान में रखकर नए सिरे से अपनी जरूरतें परिभाषित करनी होंगी। मौजूदा परिस्थितियों में फिलहाल आत्मनिर्भरता की कुंजी कृषि ही नजर आती है।

समसामयिक जरूरतों को ध्यान में रखते हुए प्रसार दूत में इस अंक में कुपोषण मुक्त भारत हेतु खाद्य फसलों का बायोफोर्टिफिकेशन, बायोसेन्सिंग तकनीकीः कृषि में गुणवत्ता और सुरक्षा की जांच के लिए रामबाण, शुष्क क्षेत्रों में खेती से अधिक आय हेतु प्रमुख क्रियाऐं, समेकित जल प्रबंधन और उन्नत उपयोग दक्षता के लिए प्रौद्योगिकी, टमाटर वर्गीय फसलों का समेकित रोग प्रबन्धन, कृषि के विकास में बीज का महत्व, पशु प्रबंधन, औषधीय फसल पचौली की उन्नतशील खेती, बाजरे की उच्च उत्पादकता तकनिकी, दलहनी फसलों में कीट प्रबंधन, सुरक्षित बीज भण्डारण एवं पेस्टिसाइड लेबल – जानकारी एवं महत्त्व पर आलेख शामिल किए गए हैं। यह अंक आपको कैसा लगा, पत्र द्वारा अवश्य सूचित करें।

संपादक

जून 2020

प्रसार दूत

वर्ष 25 | 2020 | अंक-2

संरक्षक
डॉ. अशोक कुमार सिंह
निदेशक

संयुक्त निदेशक (प्रसार)

प्रधान सम्पादक
डॉ. जे.पी.एस. डबास

सम्पादक
डॉ. एन.वी कुंभारे

सम्पादक मंडल
डॉ. वाई. वी. सिंह
डॉ. अमित गोस्वामी
श्री के. एस. यादव
डॉ. हरीश कुमार
डॉ. वाई. पी. सिंह
श्री आनन्द विजय दुबे

तकनीकी सहयोग
श्री विजय सिंह जाटव
श्री लक्खी राम मीणा
श्री राजेश सिंह

शुल्क और लेख भेजने एवं पत्रिका मंगाने का पता
कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)
भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली–110012
फोनः 011–25841039
पूसा एग्रीकॉमः 1800118989 (टोल फ्री)
ई–मेंलः incharge_atic@iari.res.in
वेबसाइटः www.iari.res.in

विषय सूची | पृष्ठ संख्या

सम्पादकीय

1. कुपोषण मुक्त भारत हेतु खाद्य फसलों का बायोफोर्टिफिकेशन — 01
2. बायोसेन्सिंग तकनीकीः कृषि में गुणवत्ता और सुरक्षा की जांच के लिए रामबाण — 04
3. शुष्क क्षेत्रों में खेती से अधिक आय हेतु प्रमुख क्रियाऐं — 08
4. समेकित जल प्रबंधन और उन्नत उपयोग दक्षता के लिए प्रौद्योगिकी — 12
5. टमाटर वर्गीय फसलों का समेकित रोग प्रबन्धन — 18
6. कृषि के विकास में बीज का महत्व — 24
7. पशु प्रबंधन — 27
8. औषधीय फसल पचौली की उन्नतशील खेती — 35
9. बाजरे की उच्च उत्पादकता तकनिकी — 38
10. दलहनी फसलों में कीट प्रबंधन — 42
11. सुरक्षित बीज भण्डारण — 46
12. पेस्टिसाइड लेबल – जानकारी एवं महत्त्व — 50

वार्षिक शुल्क ₹ 80/– मनीआर्डर द्वारा | एक प्रति मूल्य ₹ 20/–

कुपोषण मुक्त भारत हेतु खाद्य फसलों का बायोफोर्टिफिकेशन

एच. के. दीक्षित[1] एवं रणबीर सिंह[2],
आनुवंशिक संभाग[1] फार्म संचालन सेवा इकाई[2]
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली–12

भारत एक विशाल देश है जिसमें प्राकृतिक संसाधन एवं खाद्य पदार्थ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है किंतु फिर भी जनसंख्या के एक बड़े भाग को वांछित मात्रा में पौष्टिक भोजन प्राप्त नहीं हो पाते। जिसके परिणामस्वरुप लोग कुपोषित और अभाव ग्रस्त रहते हैं। मानव को बेहतर स्वास्थ्य व अपनी शारीरिक क्रियाओं को पूरा करने के लिए दैनिक आहार में पौष्टिक तत्वों जैसे कार्बोहाइड्रेट्स, वसा, प्रोटीन व विटामिनों के साथ अनेक सूक्ष्म तत्वों की आवश्यकता पड़ती है। जिनमें मुख्यरूप से जिंक, आयरन, विटामिन 'ए' और आयोडिन इत्यादि हैं। भोजन में उक्त तत्वों की कमी से कुपोषण उत्पन्न होता है। कुपोषण का सबसे बड़ा कारण है पौष्टिक आहार की कमी होना है। **कुपोषण** का अर्थ संतुलित आहार न मिलने से हैं। कुपोषण पोषक तत्वों की कमी या असंतुलन से उत्पन्न होता है। आहार में एक या अधिक पोषक तत्वों की कमी से होने वाले रोग को कुपोषण या हीनताजन्य रोग कहते हैं। महिलाओं में कुपोषण के कारण एनिमिया और घेंघा रोग होता है। बच्चों में कुपोषण के कारण सूखा एवं रतौंधी रोग जैसी समस्याएं पैदा होती हैं।

भारत सहित विश्व के अनेक देशों में कुपोषण एक बड़ी समस्या है। कुपोषण से पीड़ित बच्चों का मानसिक और शारीरिक विकास नहीं हो पाता। इस कारण से उनके अंदर बहुत सी बीमारियाa हो जाती हैं। वर्ष 2017 के आंकड़ों के हिसाब से विश्व भर में 11 प्रतिशत लोग कुपोषण के शिकार हैं। भारत में जनसंख्या का पाँचवा हिस्सा गरीबी रेखा के नीचे रहता है और 15 प्रतिशत जनसंख्या कुपोषण की शिकार है जिसकी वजह से वह स्वास्थ्य सम्बंधित बहुत सी समस्याओं की चपेट में रहते हैं। पोषण–पूर्ति कई माध्यमों से की जाती है जैसे कि व्यवसायिक संवर्द्धन, औषधि द्वारा पूर्ति, आहार का विविधिकरण तथा बायोफोर्टिफाइड।

संतुलित आहार में आवश्यक तत्व जैसे;: प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट्स, विटामिन, फाइबर और जल इत्यादि होते हैं। हमें ऐसा संतुलित आहार पूल बनाने की परम आवश्यकता है जो पोषण से जन स्वास्थ्य सुदृढ़ीकरण प्रदान कर सके और जो सभी के लिए सुलभ हो। इसी के परिणामस्वरूप एक नया विज्ञान सामने आया है, बायोफोर्टिफिकेशन। इससे कुपोषण समाधान के नए द्वार खुल गए हैं। खाद्य फसलें हमें मानव स्वास्थ्य, विकास और चयापचय के लिए महत्वपूर्ण पोषक तत्व प्रदान करती हैं। पोषक तत्वों के असंतुलन से विकार या बीमारियां हो सकती हैं। आमतौर पर खाए जाने वाले खाद्य पदार्थों में विटामिन और खनिजों को शामिल करना तथा पोषक तत्वों की कमी को रोकने का एक अच्छा तरीका हो सकता है। ऐसी ही एक तकनीक है, बायोफोर्टिफिकेशन, जो कि पादप प्रजनन द्वारा फसलों की पोषक गुणवत्ता बढ़ाने की तकनीक है। बायोफोर्टिफिकेशन दो शब्दों से मिलकर बना है, जिसमें पहला ग्रीक शब्द "बायोस" का अर्थ है "जीवन" और दूसरा लैटिन शब्द "फोर्टिफिकेयर" का अर्थ है "मजबूत बनाना"। इस प्रकार बायोफोर्टिफिकेशन फसलों के पोषण मूल्य को बढ़ाने के लिए प्रजनन की एक विधि है। पारम्पारिक पौध प्रजनन एवं आधुनिक जैवप्रौद्योगिकी के द्वारा पोषण तत्वों जैसे; आयरन व जिंक से भरपूर फसल उत्पादों का विकास करना जैवसुदृढ़ीकरण कहलाता है। बायोफोर्टिफाइड तकनीक द्वारा पोषकता में वृद्धि होती है। वैज्ञानिक इन फसलों के विकास के दौरान उनके बीज में पोषक तत्व और विटामिन, जड़ द्वारा अवशोषित कर फसलों को बायोफोर्टिफाइड कर रहे है।

बायोफोर्टिफिकेशन सूक्ष्म तत्वों की उच्च मात्रा के साथ नई खाद्य फसल किस्मों को विकसित करने का प्रयास है। बायोफोर्टिफिकेशन सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए कृषि समाधान के रूप में वैश्विक खाद्य सुरक्षा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनता जा रहा है। ऐसा अनुमान है कि फोर्टिफाइड आहार

के द्वारा आपको आटा, चावल, दूध जैसी आम वस्तुओं में पहले से अधिक पोषक तत्व मिलेंगे और आपको अलग से अन्य पूरक खाद्य पदार्थ सेवन करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। बायोफोर्टिफाइड किस्मों से बने उत्पादों को अपने दैनिक आहार में सम्मिलित करने पर व्यक्ति में आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति स्वतः ही हो जाएगी। अंतर्राष्ट्रीय मंच पर इस उपाय को कुशल, कारगर और लागत प्रभावी माना गया है तथा इसकी वैज्ञानिक पुष्टि भी हुई है। भारत में भी अब तक 35 से अधिक बायोफोर्टिफिकेशन फसल किस्में विकसित की जा चुकी हैं और इनके प्रसार के लिए बीज उत्पादन का काम भी बड़े पैमाने पर किया जा रहा है। हाल ही में नीति आयोग, भारत सरकार की राष्ट्रीय पोषण रणनीति "कुपोषण मुक्त भारत" के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए बायोफोर्टिफाइड किस्मों को अधिक प्रभावी रूप से उपयोग में लाने के लिए प्रेरित करती है।

वर्तमान में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली द्वारा उपभोगक्ताओं की पोषणिक क्षमता व स्वास्थ्य में सुधार हेतु बायोफोर्टिफाइड किस्में:

गेहूँ: डब्ल्यूबी 2: जिंक (42.0 पीपीएम) और लौह (40.0 पीपीएम) से समृद्ध।

गेहूँ: एचपीबीडब्ल्यू 1: उच्च लौह (40.0 पीपीएम) और जिंक (40.0 पीपीएम) युक्त।

मक्का: पूसा विवेक क्यूपीएम 9 उन्नत: देश का पहला प्रो विटामिन 'ए' युक्त मक्का।

मक्का: पूसा एचएम 8 उन्नत: 1.06 प्रतिशत ट्रिप्टोफेन और 3.62 प्रतिशत लाइसिन युक्त।

मक्का: पूसा एचएम 9 उन्नत: 0.68 प्रतिशत ट्रिप्टोफेन और 2.97 प्रतिशत लाइसिन युक्त।

बाजरा: एचएचबी 299: उच्च लौहा (73.0 पीपीएम) एवं जिंक: 41 पीपीएम से युक्त।

बाजरा: एएचबी 1200: उच्च लौहा (72.0 पीपीएम) से युक्त।

मसूर: पूसा अगेती मसूर: 65.0 पीपीएम लौहा युक्त।

सरसों: पूसा डबल जीरो मस्टर्ड 31: तेल में इरुसिक अम्ल 2 प्रतिशत से कम और बीज में 30 पीपीएम से कम ग्लुकोसाइनोलेट।

आलू: भू सोना: उच्च बीटा कैरोटीन (14.0 मि.ग्रा./100 ग्राम)

शकरकन्द: भू कृष्णा: उच्च एंथेसाइनिन (90.0 मि. ग्रा./100 ग्राम)

अनार: सोलापुर लाल: उच्च लौहा (5.6–6.1 मि.ग्रा./100 ग्राम) एवं जिंक (0.64–0.69 मि.ग्रा./100 ग्राम)

फलों को अधिक पोषणवान बनाने के लिए हाल में अंगूर की 'मेडिका' नामक किस्म तैयार की गई है, जिसके दानों का रंग लाल–गुलाबी है। इनमें स्वास्थ्य को अनेक लाभ पहुँचाने वाले एंटीऑक्सीडेंट की मात्रा सामान्य अंगूरों से कई गुना अधिक है। इसी तरह अमरूद की एक संकर किस्म 'अर्का किरण' विकसित की गई है, जिसमें लाइकोपीन नामक पिगमेंट की मात्रा सामान्य से अधिक है। लाइकोपीन की अधिकता से ह्रदय रोगों तथा विभिन्न प्रकार के कैंसर से सुरक्षा प्राप्त होती है। इसी प्रकार शकरकंद के पोषक तत्वों को ध्यान में रखकर इसके उत्पादन को बढ़ावा दिया जा रहा है एवं अन्य उन्नत किस्मों के विकास का कार्य प्रगति पर है।

बायो–फोर्टिफिकेशन तकनीक के लाभ

1. बायोफोर्टिफिकेशन तकनीक द्वारा जन जातियों, पिछड़े और गरीब परिवारों के लिए नियमित रुप से पौष्टिक अनाजों की उपलब्धता सुनिश्चित की जाती है।
2. बायोफोर्टिफिकेशन तकनीक अत्यधिक सुगम आसान और कम खर्चीली है, साथ ही शीघ्र परिणाम देने वाली है।
3. इस तकनीक द्वारा टिकाऊ पौष्टिक खाद्य पदार्थों की आपूर्ति होने से दूर दराज के पहाड़ी व जनजातीय क्षेत्रों में व्यवसायिक रुप से पौष्टिक व स्वास्थ्यवर्धक भोजन मिल जाता है।
4. बायोफोर्टिफिकेशन तकनीकी फसलों की उत्पादकता

गुणवत्ता एवं किसानों की आय बढ़ाने में भी सहायक होगी।

5. कुपोषण दूर करने का टिकाऊ उपाय।
6. कम कीमत में उपलब्धता।
7. निरंतरता।
8. बायोफोर्टिफिकेशन तकनीक गरीब ग्रामीण क्षेत्रों की कुपोषित जनसंख्या के लिए सूक्ष्म तत्वों की रेंज का विस्तार कर सकती है।

बायोफोर्टिफिकेशन की सफलता के लिए मुख्य बिन्दु

1. उच्च पैदावार और लाभप्रदता के साथ उच्च पोषक तत्वों के संयोजन में सफल फसल प्रजनन।
2. बायोफोर्टिफिकेशन किस्मों के संबंध में मानव विषयों के संदर्भ में प्रदर्शनकारी प्रभाव।
3. लक्षित समूहों द्वारा किसानों और उपभोगों द्वारा इसे ग्रहण करना।

बायोफ़ोर्टिफिकेशन सरकारी प्रयास और योजनाएं

भारत सरकार द्वारा जैवफोर्टीफाइड फसल किस्मों के विकास और प्रसार को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। अनुसंधान और विकास का कार्य प्रगति पर है। कुपोषण के विरुद्ध युद्ध में इस अब तक का सबसे कारगर एवं प्रभावी हथियार माना जा रहा है। वह दिन दूर नहीं जब देश में कुपोषण का आधार जैवफोर्टीफाइड फसल किस्में होंगी और देश कुपोषण से मुक्त होगा। अभी तक देश में उत्तम स्वास्थ्य हेतु अनेक जैवफोर्टीफाइड किस्मों का विकास किया जा चुका है। जिनमें चावल, गेहूँ, मक्का, बाजरा, मसूर, सरसों, सोयाबीन और बागवानी फसलें सम्मिलित हैं। इसमें कुछ किस्मों में महत्वपूर्ण प्रोटीन, विटामिन और खनिज को समृद्ध किया गया है। जिससे खाद्य में इन महत्वपूर्ण तत्वों की बाहर से आपूर्ति न करनी पड़े।

अतः आज कुपोषण एक बड़ी समस्या है, जिसका निदान परम आवश्यक है। इसके अतिरिक्त भूख की समस्या का भी हमें निदान करना होगा। अदृश्य भूख की समस्या भी हमारे बीच है। यह सामाजिक आर्थिक विकास को प्रभावित कर रहा है। इसे दूर करने के लिए हमें विभिन्न फसलों की ऐसी किस्में विकसित करनी होगी, जो पोषक तत्वों से भरपूर हो। जिसके लिए खाद्य फसलों का बायोफोर्टिफिकेशन आवश्यक तकनीक है जिसका भविष्य उज्जवल है। संक्षेप में बायोफोर्टिफिकेशन फसल सुधार रणनीति है जो कि विकासशील देशों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी से निपटने के लिए महान संभावनाओं को प्रदान करता है। बायोफोर्टिफिकेशन फसलों के पोषण मूल्य में वृद्धि करने के लिए पौध प्रजनन में शामिल है। यह पारंपारिक प्रजनन के द्वारा या आनुवंशिक अभियांत्रिकी के द्वारा पूरा किया जा सकता है। बायोफोर्टिफिकेशन फसल सूक्ष्म पोषक तत्व कुपोषण के भार को कम करने के लिए एक महत्वपूर्ण वैकल्पिक कृषि आधारित स्रोत है। सूक्ष्म कुपोषण को भोजन में विधिताओं, पूरक फोर्टिफिकेशन या बायोफोर्टिफिकेशन के द्वारा कम किया जा सकता है।

बायोसेन्सिंग तकनीकी: कृषि में गुणवत्ता और सुरक्षा की जांच के लिए रामबाण

मोनिका कुंडू, अनन्ता वशिष्ठ एवं प्रमिला कृष्णन
कृषि भौतिकी संभाग
भा.कृ.अनु.प. – भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा नई दिल्ली–110012

कृषि क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। वर्तमान परिदृश्य में कृषि उत्पादों की गुणवत्ता और सुरक्षा का आकलन महत्वपूर्ण है। दिन–प्रतिदिन नयी और उन्नत प्रौद्योगिकियों के हस्तक्षेप के कारण आंतरिक और बाहरी गुणवत्ता विशेषताओं में परिणामी परिवर्तनों का मूल्यांकन किया जाना आवश्यक है। दुनिया भर के शोधकर्ताओं के प्रयासों से कीटों के हमले और संक्रमण के कारण नुकसान को नियंत्रित करने और कृषि इंजीनियरिंग और एकीकृत प्रौद्योगिकी दृष्टिकोणों के उपयोग से उच्च उपज वाली किस्मों द्वारा उत्पादन स्तर में काफी वृद्धि की है। खाद्य उत्पादन में भारी स्तर पर वृद्धि के बावजूद, कटाई से पूर्व और बाद कृषि क्षेत्र में होने वाले नुकसान एक चिंता का कारण है और सभी का ध्यान इस ओर खींचना स्वाभाविक है। इससे पोषण सुरक्षा को काफी नुकसान होता है। अब पोषण सुरक्षा को विश्व स्तर पर तैयार की जा रही सभी कृषि नीतियों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनाया गया है। कृषि उपज में पोषण का गिरता स्तर आज गंभीर चिंता का विषय बना हुआ है। कृषि उपज में अवांछित तत्वों की उपस्थिति के लिए परीक्षण के साथ–साथ उपभोक्ताओं के अच्छे स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने के लिए पोषण सामग्री का भी मूल्यांकन करने की भी आवश्यकता है। वैश्विक स्तर पर बार–बार होने वाली बीमारियों का प्रकोप हमें कृषि उपज की गुणवत्ता और सुरक्षा के आकलन के लिए आसान, कम लागत और स्मार्ट प्रौद्योगिकियों के विकास के लिए प्रेरित करता है। इस संदर्भ में, परम्परागत तकनीक व्यक्तिपरक, महंगी, समय लेने वाली और श्रमसाध्य होती है। इस क्षेत्र में, अनुसंधान और नवाचारों को आगे बढ़ाने के लिए नैनोटेक्नोलॉजी का हस्तक्षेप महत्वपूर्ण साबित हुआ है। कृषि में नैनोमैटिरियल्स आधारित बायोसेंसर की उपयोगितायें अब वैज्ञानिकों और शोधकर्ताओं के बीच महत्वपूर्ण शोध का क्षेत्र है।

बायोसेंसर एक उपकरण है, जिसमें बायोमोलेक्यूल, एक मैट्रिक्स, ट्रांसड्यूसर और सिग्नल प्रोसेसिंग यूनिट महत्वपूर्ण संरचना में शामिल है। बायोसेंसर का सिद्धांत एक विशिष्ट बायोमोलेक्यूल इंटरैक्शन प्रतिक्रिया के आधार पर होता है। बायोसेंसर के उपयोग से किसी भी कृषि नमूने में विश्लेषण हेतु विशिष्ट एंजाइम या एंटीबॉडी को चुना जाता है। इस प्रकार विश्लेष्य पदार्थ एवं जैविक अणुओं के बीच होने वाली रासायनिक प्रतिक्रिया से द्रव्यमान, प्रतिरोध, विद्युत प्रवाह आदि में बदलाव प्रतिक्रिया का निरीक्षण किया जाता है (चित्र 1)।

समग्र विश्व में अब अनुसंधान को बायोसेंसिंग की विभिन्न विशेषताओं में सुधार के लिए नवीन नैनोपार्टिकल्स, नैनोकोंपोजीटेस और नैनोस्ट्रक्चर की तलाश में निर्देशित किया गया है। वर्तमान में विभिन्न अनुप्रयोग क्षेत्रों में,

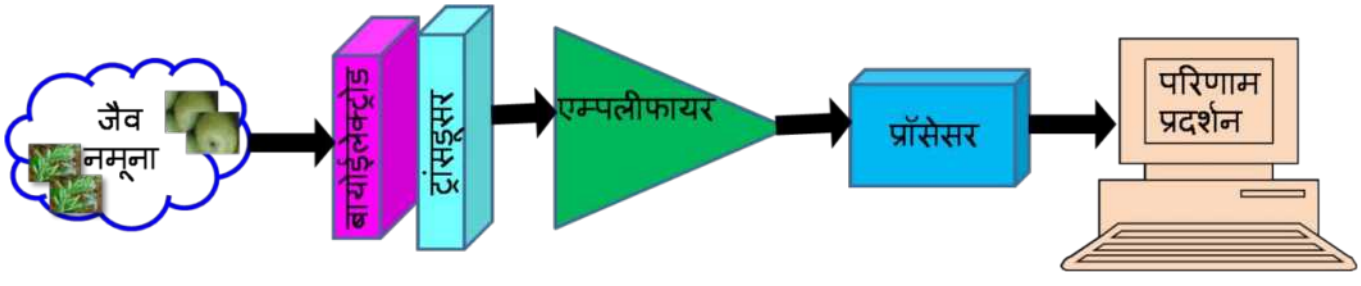

चित्र 1: बायोसेंसर की कार्य प्रणाली

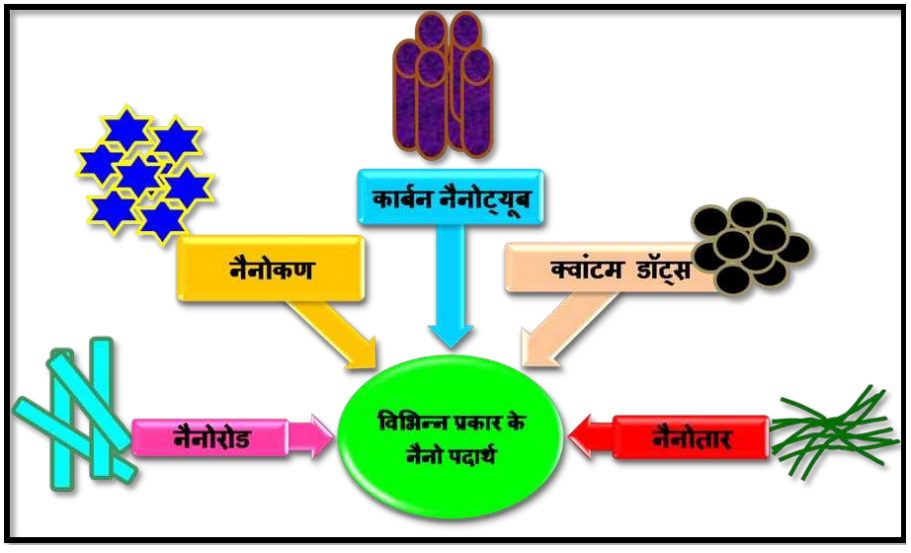

चित्र 2: बायोसेंसर में प्रयोग होने वाले विभिन्न प्रकार के नैनो पदार्थ

भिन्न–भिन्न आकृतियों और आकार के नैनोमैटेरियल्स जैसे की, कार्बन नैनोट्यूब, नैनोरोड्स, नैनोवायर, क्वांटम नैनोडोट्स, ग्राफीन आदि उपयोग किए जा रहे हैं (चित्र 2)।

इन नैनोमैटेरियल्स के आधार पर, बायोसेंसर आधारित उपकरणों के विकास के क्षेत्र में प्रगति को बढ़ावा मिलेगा। बायोसेंसर अत्यधिक विशिष्ट, संवेदनशील और प्रभावी तकनीक है, जो की कृषि में विविध अनुप्रयोगों के लिए, जैसे की– संदूषक का पता लगाना, बीमारी का कारण, सूक्ष्मजीव, विष, पोषण संबंधी तत्वों का विशेषलन आदि के लिए अत्यधिक उपयोगी साबित हो रही हैं। इन सब गुणों के कारण इसको निर्णय समर्थन प्रणाली के एकीकृत घटकों के रूप में पहचान मिली है। कृषि में विभिन्न क्षेत्र हैं जहाँ बायोसेंसर आधारित प्रणालियाँ अत्यधिक उपयोगी साबित हो रही हैं।

मिट्टी के लिए बायोसेंसर की उपयोगिताएँ

कृषि में मिट्टी विभिन प्रकार के उत्पादों के लिए बहुत महत्वपूर्ण है, एवं बढ़ते हुए प्रदूषित वातावरण में इसका संरक्षण करने से कृषि पर होने वाले अनवांछित दुष्प्रभावों से बचा जा सकता है। अतः हमें मिट्टी में होने वाले बदलावों की निगरानी करने वाली प्रणालियाँ ढूंढनी होंगी। अनुसंधानों में पाया गया है की, कृषि लायक मिट्टी में विभिन्न प्रकार के प्रदूषकों, कीटनाशकों, भारी धातुओं आदि की कथित तौर पर भरमार पायी जा रही हैं। तेजी से बढ़ती सभ्यता के कारण, प्राकृतिक संसाधनों जैसे कि भूमि, पानी और हवा में जहरीले तत्वों का निरंतर समावेश हो रहा है। पारा, आर्सेनिक, सीसा, क्रोमियम, जस्ता, कैडमियम और तांबा सहित कई प्रकार की भारी धातुएँ विभिन्न प्रक्रियाओं के माध्यम से मिट्टी में मिलती जा रही हैं। इसके अलावा कृषि प्रक्रियाओं और उद्योगों से निकलने वाला कचरा भी मिट्टी प्रदूषण का स्रोत है। विभिन्न भारी एवं विषैली धातुओं जैसे की निकल धातु के संदूषण से कोशिका विभाजन और पौधे के विकास में बाधा उत्पन्न होती है। एक अन्य विषैला तत्व, क्रोमियम बीज के अंकुरण, उपज, और जड़ विकास आदि को प्रभावित करता है। हालाँकि मिट्टी में कीटनाशकों और भारी धातुओं को क्रोमैटोग्राफी पर आधारित पारंपरिक विश्लेषणात्मक तरीकों का उपयोग करके पता लगाया जा रहा है, परंतु ये प्रक्रियाएँ अत्यधिक जटिल, महंगी और संचालन के लिए कुशल तकनीकी व्यक्तियों पर आधारित हैं। इस संधर्भ में, बायोसेंसर आधारित तकनीकियाँ पारंपरिक तकनीकियों की तुलना में अधिक सटीकता के साथ मिट्टी के स्वास्थ्य के मूल्यांकन के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो रही हैं। कोलोरिमेट्रिक एवं पोटेंसीओमेट्रिक तकनीकियों पर आधारित बायोसेंसर इन धातुओं को बहुत कम सांद्रता पर भी निर्धारित कर सकते हैं। मिट्टी और पानी की गुणवत्ता के विश्लेषण में बायोसेंसर के अनुप्रयोगों के अलावा, कई अन्य अनुप्रयोग क्षेत्र हैं जहां यह उभरती हुई तकनीक अमिट छाप छोड़ रही है ।

खाद्य उद्योग में बायोसेंसर की उपयोगिताएँ

खाद्य उद्योग में बायोसेंसर के कई अनुप्रयोग हैं। वर्तमान समय में खाद्य गुणवत्ता और सुरक्षा के लिए संबंधित स्थान पर परीक्षण हेतु उपकरणों की भारी मांग है। बहुत सारे पैक किये हुए और संसाधित खाद्य पदार्थों से बाजार भरा है। उपभोक्ताओं के पास समय की कमी एवं आधुनिक रहन सहन के कारण, इस प्रकार के उत्पादों को और भी बढ़ावा मिला है। इस प्रकार के खाद्य पदार्थों के लिए यह निर्धारित करने की आवश्यकता है कि इनके परिवहन के दौरान, क्या उचित भंडारण की स्थिति को बनाए रखा गया है या नहीं। इसके अलावा, संरक्षक, सामग्री और भंडारण की स्थिति के संदर्भ में खाद्य मानकों के उचित पालन की जाँच भी की जानी चाहिए। बायोसेंसर का उपयोग मुख्यतया किसी भी बाहरी कण के होने का, भोजन के दूषित, विषाक्त, रोगजनक आदि होने की स्थिति का पता लगाने के लिए किया जा सकता है। इस तकनीकी को किसी भी बीमारी के प्रकोप की प्रारंभिक चेतावनी देने के लिए निर्णय समर्थन प्रणाली के साथ एकीकृत किया जा सकता है।

बायोसेंसर बहुत लक्ष्य विशिष्ट हैं, क्योंकि वे आणविक पहचानने वाले पदार्थ के रूप में एंजाइम या एंटीबॉडी का उपयोग करते हैं। खाद्य उद्योग में विभिन्न क्षेत्र हैं जहाँ बायोसेंसर के संभावित अनुप्रयोगों को स्पष्ट रूप से वास्तविक बनाया जा सकता है जैसे,

- **विटामिन विश्लेषणः** एक सेंसर चिप पर विटामिन के साथ प्रोटीन के बीच परस्पर क्रिया की निगरानी के लिए विभिन्न प्रकार के बायोसेंसर विकसित किए जा सकते हैं। इस प्रकार पैदा होने वाली परिणामी प्रतिक्रिया (विद्युत संकेत या वर्णमिति प्रतिक्रिया के रूप में) को विश्लेषण के लिए आगे संसाधित किया जा सकता है।
- **एंटीबायोटिक्स का पता लगानाः** एंटीबायोटिक के रूप में कई दवाएं जानवरों में अपना अवशेष छोड़ती हैं। विभिन्न पशु उत्पादों जैसे दूध, अंडे, मांस आदि में ऐसी एंटीबायोटिक दवाओं की उपस्थिति पायी गयी है। बायोसेंसर संवेदनशील और सटीक रूप से क्रोमैटोग्राफिक तकनीकों की तुलना में कम समय में ऐसी एंटीबायोटिक दवाओं की उपस्थिति का विश्लेषण करते हैं।
- **खाद्य पदार्थों के खराब होने की पहचानः** खाद्य पदार्थों के खराब होने के संकेतकों की निगरानी और निर्धारण के लिए और विभिन्न प्रकार के यौगिकों का विश्लेषण करने हेतु भिन्न–भिन्न प्रकार के ट्रांसडक्शन सिद्धांतों (एम्परोमेट्रिक, कोलोरिमेट्रिक, एलेक्ट्रोकेमीकल) पर आधारित बायोसेंसरों को चयनित इलेक्ट्रोड और एंजाइमों के उपयोग से विकसित किया जा सकता है।
- **सूक्ष्मजीवी संदूषण का पता लगानाः** आजकल खाद्य आपूर्ति श्रृंखला में विभिन्न प्रक्रियाओं जैसे कि कटाई, भंडारण, परिवहन आदि से गुजरते हुए भोजन में सूक्ष्मजीवी संदूषण की प्रबल संभावना रहती है। प्रदूषित भोजन विभिन्न प्रकार की खाद्य–विषायण संबन्धित बीमारियों का कारक है। इस प्रकार के खाद्य जनित रोगों की रोकथाम के लिए उनका समय से पहले पता लगाना अति आवश्यक है। इस दिशा में सूक्ष्मजीवी संदूषण का पता लगाने वाले इम्यूनोबायोसेंसर बहुत कारगर साबित हो रहे हैं। जो सूक्ष्मजीव की संरचना एवं प्रारूप पर आधारित चयनात्मक इलेक्ट्रोड का उपयोग करते हुए विशिष्ट एंटीबॉडी के सतह स्थिरीकरण पर आधारित हैं।

पशुधन उत्पादन एवं प्रबंधन के लिए बायोसेंसर की उपयोगिताएँ

अति विशिष्टता और संवेदनशीलता के आधार पर, बायोसेंसर अब पशु निदान और स्वास्थ्य प्रबंधन के लिए उपयोगी उपकरणों के विकास के लिए पथ प्रदर्शित कर रहे हैं। परिशुद्धता आधारित पशुधन खेती में बायोसेंसर मुख्य प्रौद्योगिकी के रूप में एक अविभाज्य अंग की तरह काम करते हैं। पशुओं में समय से पहले रोगजनकों का पता लगाने, ओव्यूलेशन भविष्यवाणी, प्रोजेस्टेरोन निगरानी आदि के लिए उपलब्ध प्रोद्योगिकियों की कमी के होते, बायोसेंसर की तरह नवीन एवं क्रान्तिकारी तकनीकियों की अत्यंत माँग है।

पशुओं के अच्छे स्वास्थ्य के लिए, जैविक प्रभाव जैसे कि जीनोटॉक्सिसिटी, इम्युनोटॉक्सिसिटी, बायोटॉक्सिन

और एंडोक्राइन प्रभाव के माप के लिए बायोसेंसर वांछनीय हैं। बायोसेंसर श्वसन दर, हृदय गति और जानवरों के आश्रय, आहार और जीनोटाइप के प्रभाव के कारण रक्तचाप में उतार–चढ़ाव जैसी प्रतिक्रियाओं के वास्तविक समय में निगरानी और अध्ययन के लिए सहायक साबित हो रहा है । बायोसेंसर की भूमिका को आगे बढ़ाने के लिए जानवरों के आहार संबंधी तत्व और पोषण में जैव रासायनिक संदूषकों के तेज और सटीक वर्णन के साथ–साथ उनके अंतिम उत्पादों में पाये जाने वाले प्रभावों का विश्लेषण करने के लिए आधारभूत विधियों और तकनीकों में सुधार करते हुआ उनका विकास किया जा सकता है।

पौधों के लिए बायोसेंसर की उपयोगिताएँ

पौधों की वृद्धि और विकास कई महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं के उपर निर्भर करता है। इन प्रक्रियाओं एवं घटनाओं की गतिशीलता पर सतर्क निगरानी रखने के लिए, स्मार्ट और संवेदनशील तकनीकी की आवश्यकता होती है जो वास्तविक समय में निगरानी की प्रणाली के रूप में कार्य कर सकती है। यह ज्ञात है की, प्रकाश संश्लेषण की दर, सूक्ष्म और स्थूल पोषक तत्वों की सांद्रता, फाइटोहार्मोन का स्तर आदि समग्र उत्पादकता को प्रभावित करने वाले कारक हैं। बायोसेंसर तकनीकी ने पादप तनाव संकेतक, क्लोरोफिल के स्तर, पानी की मात्रा आदि का पता लगाने में एक आवश्यक भूमिका निभाने में सक्षम है ।

पौधों में बीमारी का पता लगाना

कृषि में खाद्य हानि लगातार चर्चा में बने रहने वाले मुद्दों में से एक है, और इसके पीछे प्रमुख कारण रोगजनक सूक्ष्मजीव (बैक्टीरिया, वायरस और कवक) हैं । फसलों एवं फल और सब्जियों में विभिन्न स्तरों (विकास, कटाई और प्रसंस्करण के दौरान) पर होने वाली इन हानियों को कम करने की आवश्यकता है। डीएनए–आधारित बायोसेंसर या विशिष्ट इम्यूनोसेंसर्स का लक्ष्य के प्रति उनकी विशिष्टता के कारण, इस प्रकार के रोगजनकों का पता लगाने हेतु उपयोग किया जा सकता है।

विषाक्त यौगिकों का पता लगाना

बैक्टीरिया, वायरस और कवक कई प्रकार के विषाक्त पदार्थों (माइकोटोक्सिन, एक्सोटॉक्सिन) के रूप में जानवरों और मनुष्यों दोनों को गंभीर नुकसान पहुंचाने में सक्षम हैं। इन विषाक्त पदार्थों से भोजन और पानी दूषित होते हैं। वर्तमान समय में, संवेदनशील और विशिष्ट तरीके से इस तरह के हानिकारक विषाक्त पदार्थों का पता लगाने के लिए बायोसेंसर प्लेटफॉर्म की आवश्यकता हैं।

डीएनए और प्रोटीन का पता लगाना

अब डीएनए और प्रोटीन पर आधारित बायोसेंसर, पौधे के रोगजनकों का पता लगाने, खनिज की कमी की जाँच, और पौधों की प्रजातियों आदि की पहचान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इस प्रकार के बायोसेंसर परिस्थितियों का विशिष्ट, संवेदनशील और सटीक पूर्वानुमान लगाने में सक्षम होते हैं।

तनाव का पता लगाना

विभिन्न तनाव जैसे कि रासायनिक, विषैले तत्व, भौतिक तनाव आदि पौधों की वृद्धि और विकास को प्रभावित करते हैं। आमतौर पर तनाव की स्थिति पौधों में कुछ संकेतकों को भी छोडती हैं। एम्पिरोमेट्रिक, इलेक्ट्रोकेमिकल और ऑप्टिकल जैसी विभिन्न ट्रांसड्यूसर तकनीकों का उपयोग करके पौधों में इन तनाव की स्थितियों की पहचान करने में बायोसेंसर्स बहुत उपयोगी साबित हो रहे हैं।

निकट भविष्य में बायोसेंसर्स कृषि क्षेत्र में आने वाली प्रमुख क्रांतियों में से एक होगी। इस तकनीकी के लगातार होते विस्तार से यह सभी अन्य महत्वपूर्ण तकनीकियों का एक अटूट हिस्सा बनने में सक्षम है। शिक्षाविदों, शोधकर्ताओं, वैज्ञानिकों द्वारा ईजाद किए गए नवीनतम तरीकों, प्रक्रियों, तकनीकियों एवं बायोसेंसर्स के सम्मिश्रण से विभिन्न प्रकार की जटिल समस्याओं के निदान में मदद मिलती है। बायोसेंसर्स की विशेषताओं एवं सुविधाओं में सुधार हेतु एंजाइम और एंटिबॉडी के सतह पर लगाने की प्रभावी प्रक्रियाओं, प्रभावशाली नैनोमटिरियल मैट्रिक्स एवं कम लागत की रचना पर आधारित शोध पर ध्यान केन्द्रित करने की जरूरत है। समय दूर नहीं जब खाने एवं रोजमर्रा की जरूरत की वस्तुओं की गुणवत्ता जांच के लिए उपभोक्ताओं के हाथों में छोटे छोटे उपयोगी उपकरणो की भरमार होगी।

शुष्क क्षेत्रों में खेती से अधिक आय हेतु प्रमुख क्रियाऐं

राज सिंह, आर. एस. बाना एवं विनोद कुमार सिंह
सस्य विज्ञान संभाग,
भा.कृ.अनु.प. – भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110 012

कृषि भारत की अर्थ व्यवस्था, खाद्य एवं पोषण सुरक्षा का महत्वपूर्ण आधार है। देश की लगभग 70% जनसँख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है तथा कृषि के द्वारा देश में कुल कार्य करने वाले लोगो में से 55 % को रोजगार प्रदान किया जाता है। देश की 60 % जनसंख्या की आजीविका कृषि पर निर्भर करती है तथा कृषि के द्वारा देश की 133 करोड़ जनसँख्या के लिए खाद्यान्न प्रदान करने के अतिरिक्त 51.2 करोड़ पशुओं के लिए चारे का उत्पादन किया जाता है। देश मे लगभग 140 मि. हे. शुद्ध कृषि क्षेत्र में केवल 68 मि. हे. मे ही सिंचित क्षेत्र है जबकि शेष 74 मि. हे. क्षेत्र मे वर्षा आधारित खेती या शुष्क खेती की जाती है। शुष्क खेती पर देश की लगभग 40% जनसंख्या तथा 60% पशु संख्या निर्भर है लेकिन कम व अनियमित वर्षा तथा बार बार सूखा पड़ने के कारण शुष्क कृषि हमेशा जोखिम भरी होती है तथा इन क्षेत्रों की औसत उत्पादकता एवं आय कम होने के कारण सुचारू रूप से आजीविका चलाना बहुत कठिन होता है। कुल शुद्ध कृषि क्षेत्र के लगभग 52% क्षेत्र की उत्पादकता कम होने से देश में खाद्य एवं पोषण सुरक्षा को सुनिश्चित करना बहुत बड़ी चुनौती है। अतः देश की लगातार बढ़ती जनसँख्या के लिये खाद्य एवं पोषण सुरक्षा एवम शुष्क क्षेत्र के किसानों की आय बढ़ाने के लिए औसत उपज बढ़ाना बहुत आवश्यक है। शुष्क क्षेत्र की अनेकों समस्याये है जिनका समाधान करके शुष्क खेती की औसत उपज बढ़ाकर किसानों की आय को बढ़ाया जा सकता है।

शुष्क खेती की समस्याएँ

- तापमान, हवा की गति एवं वाष्पोत्सर्जन में अधिकता
- कम एवं अनिश्चित वर्षा
- भू–जल की मात्रा एवं गुणवत्ता में कमी
- मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में ह्रास
- खेती में परंपरागत विधियों के प्रयोग की अधिकता
- सूखे के कारण फसल उत्पादन में जोखिम
- कम फसल उत्पादन एवं आय में कमी
- चारे की कमी के कारण पशुओं की कम दूध उत्पादकता
- संसाधनो की कमी
- जलवायु परिवर्तन का बढ़ता प्रभाव
- किसानों का सामाजिक एवं आर्थिक स्तर में कमी

शुष्क खेती से अधिक उत्पादन हेतु उन्नत तकनीकियाँः

शुष्क खेती से किसानों की आय में बढ़ोतरी हेतु औसत फसल उपज बढ़ाना बहुत ही आवश्यक है। इसके साथ–साथ विभिन्न संसाधनों जैसे खाद एवं ऊर्वरक, पानी, तथा ऊर्जा की क्षमता को बढाकर फसल उत्पादन व्यय को कम करके आय में बढ़ोतरी की जा सकती है। शुष्क खेती से अधिक उत्पादन एवं लाभ प्राप्त करने के लिए उन्नत तकनीकियों का प्रयोग करना बहुत आवश्यक है।

जल प्रबन्ध

वर्षा आधारित फसलों के लिए उचित जल प्रबंधन बहुत आवश्यक है। वर्षा जल को तकनीकियों के प्रयोग द्वारा संचित करके फसल उत्पादन को बढ़ाकर किसानों की आय को बढ़ाया जा सकता है।

- भू–समतलीकरण, कृषि का पट्टीदार तरीका, मेड़बंदी, वृक्षारोपण, व ढलान के विपरीत जुताई व बुआई करके वर्षा जल का खेत में संचयन करना तथा मृदा कटाव को रोकना।
- खेत के निचले इलाकों में तालाब व टैंक का निर्माण करके वर्षा के पानी को इकट्ठा करना और उसका फसल की संवेदनशील अवस्थाओं तथा जीवन रक्षक स्प्रिंकलर और ड्रिप सिंचाई विधि द्वारा सिंचाई करना।

- ढ़लान वाले क्षेत्रों में जल अधिग्रहण क्षेत्र का विकास करना, ढाल वाले खेतों में थोड़ी–थोड़ी दूर पर कम ऊँचाई की मेड़ बनाकर पानी के बहाव को कम करना तथा खेत के पानी को खेत में रोकना।
- संरक्षित कृषि व पलवार के प्रयोग को बढ़ाना।
- गर्मी में गहरी जुताई करके व वर्षा उपरांत जुताई करके पाटा लगाकर मृदा नमी संरक्षण करना।
- जमीन से पानी को भाप बनकर उड़ने से रोकने के लिए कुल्फा या बक्खर चलाकर मिट्टी की ऊपरी परत को तोड़ना
- उचित पौधों की संख्या बनाए रखना, पत्तियों को मुरझाने से बचाने के लिए पोटेशियम का पर्णीय छिड़काव (0–5%) करना।
- वाष्पोत्सर्जन रोधी रसायनों जैसे केओलिन (6%) व साइकोसेल (0–3%) का फसल की उचित अवस्था पर छिड़काव करना।
- वैकल्पिक भू उपयोग जैसे कृषि उधानिकी, कृषि वानिकी, चरागाह वानिकी, अन्तः फसलीय पद्धति एवं समय समय पर अन्तः सस्य क्रिया, आदि करना।

उन्नत किस्मों का प्रयोग

अधिकतर किसान अपने पारम्परिक बीज को बुआई के लिए प्रयोग करते हैं। जबकि देश में स्थापित अनेक अनुसंधान संस्थानों एवं कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा सभी फसलों की उन्नत किस्में विकसित की है। उन्नत किस्मों का प्रयोग कर पारम्परिक किस्मों की अपेक्षा 20 से 40% तक अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। विभिन्न खरीफ एवं रबी फसलों की उन्नत किस्में सारणी 1 मे दर्शायी गई है।

सारणी 1: खरीफ एवं रबी फसलों की उन्नत किस्में

फसल का नाम (खरीफ)	उन्नत किस्में
बाजरा	पूसा कंपोजिट 701 पूसा हाइब्रिड 415, पूसा कंपोजिट 443, पूसा कंपोजिट 383
मूंग	पूसा रत्ना, पूसा विशाल, पूसा 0672, पूसा 9531
अरहर	पूसा 991 पूसा 992, पूसा 2002, पूसा 2001, पूसा 9 तथा पूसा 16
लोबिया	पूसा फाल्गुनी, पूसा सुकोमल, पूसा कोमल, सी पी–55
मक्का	पूसा कंपोजिट 3 व 4, हाइब्रिड ए एच 421(PEHM 5), हाइब्रिड ए एच 58 (PEHM 3)
सोयाबीन	पूसा 9712,पूसा 9814
ज्वार (चारे हेतु)	पूसा चरी 615, पूसा चरी109, पूसा चरी हाइब्रिड 106
बेबीकोर्न	जी– 5414, जी 5416
रबी	
मसूर	पूसा अगेती, पूसा शिवालिक, पूसा वैभव, पूसा मसूर –5 (L-4594)
जौ	बी एच एस–380 (पूसा लोसर), बी एच एस 352 (हिमदारी), बी एच 902, आर डी 2715
चना (काबुली)	पूसा 3022, पूसा 1053 (चमत्कार), पूसा 2024, बी जी डी 128, पूसा 1108, पूसा 1105, पूसा 1103, पूसा 1088
चना (देसी)	पूसा 5023 (पूसा शक्तिमान), पूसा 547, पूसा सुभ्रा (बी जी डी 128), पूसा 1103, पूसा धारवाड़ प्रगति, (BGD 72), पूसा 362, पूसा 372, पूसा 5028
मटर	पूसा प्रगति, पूसा पार्वती, पूसा हीमलता, आर्किल

फसल विविधीकरण

अधिक उत्पादन एवं आय प्राप्त करने तथा जोखिम से बचने के लिए फसल विविधीकरण बहुत आवश्यक है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में खरीफ व रबी ऋतु में फसल विविधीकरण द्वारा अधिक उपज एवं लाभ प्राप्त किया जा सकता है। पारंपरिक फसलों की जगह कम समय में अधिक उपज, अधिक आय व पूरे वर्ष आमदनी प्राप्त करने के लिए अनेक फसलें जैसे खरीफ ऋतु मे बेबीकोर्न, सब्जी हेतु लोबिया, लौकी, खीरा, तरबूज, भिंडी तथा रबी ऋतु में चना, मसूर, सब्जी हेतु प्याज तथा सरसों साग को उगाकर अधिक उपज एवं आय प्राप्त की जा सकती है। प्रयोगों द्वारा ज्ञात हुआ है कि खरीफ ऋतु में पारंपरिक फसलों की अपेक्षा फसल विविधीकरण से अधिक उपज एवं जल उपयोग दक्षता प्राप्त की जा सकती है (सारणी 2 व 3)

सारणी 2: वर्षा आधारित खेती में फसल विविधीकरण द्वारा खरीफ फसलों की उपज एवं पानी उपयोग दक्षता पर प्रभाव

फसल प्रणाली	बाजरा समतुल्य उपज (टन/हे०)	बाजरा की अपेक्षा उपज में वृद्धि (%)	जल उपयोग दक्षता (कि०/हे० मि०मी)
बेबीकोर्न	8.54	388.00	39.17
लोबिया (सब्जी हेतु)	5.13	193.14	18.45
मूंग	3.29	88.00	11.83
बाजरा	1.75	0	6.29

सारणी 3: रबी ऋतु के दौरान वर्षा की स्थिति में फसल विविधीकरण से प्रभावित उत्पादकता

फसल	सरसों समतुल्य उपज (टन/हे.)	मसूर की अपेक्षा उपज में वृद्धि (%)	जल उपयोग दक्षता (कि./हे. मि.मी)
सरसों	1.62	32.79	10.53
जौं	1.26	3.28	8.19
चना	2.00	63.93	13.00
मसूर	1.22	0	7.93

फसल सघनीकरण

अधिक उत्पादन एवं आय प्राप्त करने हेतु फसल सघनीकरण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। फसल सघनीकरण द्वारा प्रति क्षेत्र एवं समय इकाई उत्पादन बढाया जा सकता है तथा संसाधनों का उचित उपयोग कर उनकी क्षमता को बढाया जा सकता है। प्रयोगों के द्वारा ज्ञात हुआ है कि शुष्क खेती में वर्षा जल का प्रभावी रूप से प्रयोग करके फसल सघनता को 200% तक बढाया जा सकता है। (सारणी 4)

सारणी 4: वर्षा आधारित खेती में उपज, पानी उपयोग दक्षता एवं आय पर फसल विविधीकरण का प्रभाव

फसल प्रणाली	फसल प्रणाली की बाजरा समतुल्य उपज (टन/हे.)	शुद्ध आय (₹/हे.)	लाभ: लागत अनुपात	सापेक्ष आर्थिक दक्षता (%)	जल उपयोग दक्षता (₹/हे. –मि.मी)
बेबी कोर्न–सरसों	15.66	122629	1.42	184.72	284.00
लोबिया(सब्जी हेतु) – जौ	9.03	52305	0.77	64.18	121.13
मूंग – चना	8.94	48118	0.68	62.54	111.43
बाजरा – मसूर	5.50	17271	0.31	0	40.00

वैकल्पिक भू उपयोग

वर्षा आधारित खेती में विशेष रूप से वैकल्पिक भू उपयोग बहुत महत्वपूर्ण है। वैकल्पिक भू उपयोग के द्वारा मौसम की अनिश्चितता से होने वाले जोखिम से बचा जा सकता है। सूखे की स्थिति में जब फसलें पूर्ण या आंशिक रूप से सूख जाती है तो ऐसी स्थिति में बहुवर्षीय पौधों के द्वारा चारे, फल एवं ईंधन या इमारती लकड़ी के रूप में कुछ न कुछ प्राप्त हो जाता है। अनुकूल मौसम में बहुवर्षीय फल एवं वानिकी पौधों के साथ अन्तः फसलीय पद्दत्ति से फसलें उगाकर तथा उन्हें पोषक तत्व एवं अधिक नमी की उपलब्धता द्वारा कम स्थान में अधिक पैदावार एवं आय प्राप्त की जा सकती है। वैकल्पिक भू–उपयोग में शस्य वानिकी, कृषि उद्यानिकी, उद्यानिकी चारागाह, इत्यादि पद्दतियां सम्मिलित की जा सकती है।

संरक्षित खेती

शुष्क खेती में संरक्षित खेती के अंतर्गत शून्य भू–परिष्करण या कम से कम भूमि की जुताई, फसल अवशेषों द्वारा भूमि का आछादन तथा फसल चक्र एवं विविधीकरण का उपयोग करके विषम परिस्थितियों में भी अधिक फसल उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है तथा भूमि की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणवत्ता में सुधार किया जा सकता है और संसाधनो की उपयोग क्षमता को बढ़ाया जा सकता है तथा जलवायु परिवर्तन को कम किया जा सकता है प्रयोगों द्वारा ज्ञात हुआ है कि शून्य जुताई मे 3–4 टन प्रति हे. फसल अवशेषों की बिछावन प्रयोग करने से पारंपरिक कृषि की अपेक्षा 23 प्रतिशत तक अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है (सारणी 5)। इसी प्रकार यदि फसलों को मेंढ व कूड़ विधि द्वारा लागया जाए तो कम पानी में अच्छी फसल की पैदावार पायी जा सकती है तथा क्षारीय भूमि में क्षार के प्रभाव से बचा जा सकता है।

सारणी 5: संरक्षण कृषि का वर्षा आधारित खेती में रबी फसलों की उत्पादकता तथा शुद्ध आय पर प्रभाव

उपचारक	चना समतुल्य दाने की उपज (कि.ग्रा/है.)	शुद्ध आर्थिक लाभ (₹/है.)	लाभः लागत अनुपात
शून्य जुताई में फसल अवशेष			
पारंपरिक कृषि	1126	20271	0.64
शून्य जुताई मे खडी फसल अवशेषों का प्रयोग	1276	25701	0.77
शून्य जुताई मे फसल अवशेषों का बिछावन के रुप मे प्रयोग	1473	31923	0.88
फसलीय पद्धति			
चना	1594	40477	1.22
मसूर	1035	13699	0.40
जौ	1247	22895	0.66

देश में किसानों विशेष रूप से लघु एवं सीमान्त किसानों की आय काफी कम है तथा 50% से अधिक ऐसे किसान है जिनकी आय उनके परिवार की आजीविका चलाने हेतु पर्याप्त नहीं है परिणाम स्वरूप अधिकतर किसान कर्ज से दबे होते हैं। आय कम होने के अनेक कारण हैं जिनमे, कम फसल उत्पादन, अधिक लागत, बाजार में कम मूल्य तथा जलवायु की विषमता प्रमुख है। किसान यदि उन्नत तकनीकों का प्रयोग कर फसल उत्पादन करें तो शुष्क खेती द्वारा अधिक फसल उत्पादन एवं आय प्राप्त की जा सकती है तथा किसानों की आजीविका को सहायता प्रदान की जा सकती है।

समेकित जल प्रबंधन और उन्नत उपयोग दक्षता के लिए प्रौद्योगिकी

मनोज खन्ना एवं रणबीर सिंह
फार्म संचालन सेवा इकाई
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012

भारत में विश्व की लगभग 18 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है वहीं जल की मात्रा केवल 4 प्रतिशत है। जल को जीवन का आधार कहा गया है खेती सहित हमारी सभी गतिविधियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कृषि मुख्यतः जल, जमीन एवं बीज पर निर्भर करती है और इन्हीं कारकों की गुणवत्ता आवश्यक है। जल की समय पर उपलब्धता और सुनिश्चित आपूर्ति की उपलब्धता कृषि उत्पादकता का एक महत्वपूर्ण निर्धारक है। हमारे देश में सिंचाई के सबसे अधिक संसाधन उपलब्ध हैं। सिंचाई जल की तीव्रता, फसल सघनता एवं फसल की पैदावार को बढ़ाती है। पिछले दो दशकों के दौरान खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि मुख्य रूप से भूमि उत्पादकता में वृद्धि से हुई है। इस अवधि में खाद्य अनाज के अंतर्गत सकल बुवाई क्षेत्र सार्थक रूप से नहीं बदला है। उत्पादकता में वृद्धि के लिए आदानों जैसेः सिंचाई, उच्च उपज वाली किस्मों के बीजों और उर्वरक पोषक तत्वों ने योगदान दिया है। कृषि उत्पादकता में वृद्धि में अकेले सिंचाई का योगदान 60 प्रतिशत था। भारत के सूखा प्रभावित क्षेत्रों में बढ़ती जनसंख्या को खिलाने के लिए कम भूमि और पानी से छोटे किसानों द्वारा अधिक भोजन का उत्पादन करने की चुनौती का सामना करना पड़ता है। इन क्षेत्रों में प्रमुख समस्याएं गैर–मानसून अवधि के दौरान पानी की उपलब्धता, मानसून के दौरान लंबे समय तक सूखे रहने, पानी स्तर और गुणवत्ता में गिरावट और पानी के आगमन और अनुप्रयोग की अक्षम प्रणालियों के दौरान सीमित होती हैं। जलवायु परिवर्तन के साथ, खेती को बदलते वर्षा पैटर्न के अनुकूल बनाना होगा। सरकार द्वारा भी राष्ट्रीय जल मिशन चलाया जा रहा है जिसका उद्देश्य जल संरक्षण, जल के अपव्यय को कम करने तथा राज्यों के बीच जल का अधिक समेकित वितरण सुनिश्चित करने हेतु समेकित जल संसाधनों को ध्यान में रखते हुए आगे बढ़ेगा।

मानसून की निर्भरता, कृषि को अनिश्चितता प्रदान करती है। उच्च निवेश, प्रमुख और लघु सिंचाई परियोजनाओं के विकास से मानसूनी वर्षा की निर्भरता से कृषि काफी हद तक मुक्त है। हालाँकि, भारत में प्रचुर जल संसाधनों के साथ भी सिंचाई के लिए उपलब्ध पानी लगातार कम होता जा रहा है। सिंचाई हेतु मृदा सतह का लगभग 69 मिलियन हेक्टेयर मीटर (mham) और भूजल का 43.2 मिलियन हेक्टेयर मीटर उपयोग के लिए उपलब्ध है, हालांकि वर्तमान जल उपयोग देश में विभिन्न प्रयोजनों के लिए लगभग 60 मिलियन हेक्टेयर मीटर है। सिंचाई जल का उपयोग पानी की कुल उपयोग क्षमता का लगभग 84 प्रतिशत यानी 75 बिलियन क्यूबिक मीटर है। अन्य उपयोगों के लिए पानी की मांग में वृद्धि के साथ और घरेलू, औद्योगिक और बिजली क्षेत्रों से भयंकर प्रतिस्पर्धा के कारण सिंचाई के लिए पानी के उपयोग की हिस्सेदारी 2025 तक लगभग 73 प्रतिशत कम होने की संभावना है। पानी की प्रति व्यक्ति उपलब्धता लगातार कम होती जा रही है और अगले दो दशकों में 1500 घन मीटर के गंभीर स्तर तक पहुँचने की उम्मीद है। भारत के कुल 328 मिलियन हेक्टेयर भौगोलिक क्षेत्र में से केवल 45 प्रतिशत से कम क्षेत्र में खेती की जाती है। खेती वाले क्षेत्र में से केवल 65 मिलियन हेक्टेयर (35 प्रतिशत) में सिंचाई होती है। जल संसाधनों की पूरी क्षमता का दोहन करने के बाद भी, 50 प्रतिशत से अधिक खेती योग्य भूमि सिंचित नहीं है।

सिंचाई जल की मांग सतत् खाद्य उत्पादन से संबंधित होने के कारण आपूर्ति क्षमता को आगे बढ़ाएगी। इसके अतिरिक्त, सघन सिंचाई सुविधाओं का निर्माण और नहर के पानी के अत्यधिक उपयोग से जल–जमाव, मिट्टी की

लवणता, मृदा क्षारता आदि की समस्याएँ बढ़ गई हैं, जबकि बढ़े हुए कुओं और अक्षमताओं के माध्यम से जल संसाधनों के अत्यधिक दोहन के कारण भूजल बहुत तेजी से घट रहा है। सिंचाई प्रणाली में सदियों पुरानी विधियों को अपनाने के कारण पानी का उपयोग हो रहा है। इसलिए, दो महत्वपूर्ण आदानों जैसेः जल एवं उर्वरकों द्वारा जल उपयोग दक्षता बढ़ाना, वर्तमान में समय की आवश्यकता है। विभिन्न सरकारें इन आदानों पर सब्सिडी दे रही हैं, ताकि बढ़ती जनसंख्या हेतु भोजन, ईंधन, चारा और फाइबर की मांग को पूरा किया जा सके। जैसे–जैसे जनसंख्या बढ़ी है उसी के साथ शहरों में जल का उपयोग बढ़ा है। ऐसे में मिट्टी और जल संसाधनों को कम किए बिना, सिंचित कृषि को कम पानी का उपयोग करके अधिक भोजन का उत्पादन करने के लिए कहा जाता है। ऐसा करने हेतु दबावयुक्त सिंचाई तकनीक, किसानों को पानी, पोषक तत्वों और पीड़कनाशकों के उपयोग पर अधिक नियंत्रण देकर इस चुनौती को पूरा करने में सहायता मिल सकती है।

दबावयुक्त सिंचाईः भविष्य की तकनीक

ड्रिप सिंचाई प्रणाली (जिसे टपक/बूंद–बूंद या ड्रिप या ट्रिकल सिंचाई भी कहा जाता है) जल की बचत, उपज और पानी के उपयोग की दक्षता के मामले में अन्य सतह सिंचाई विधियों की तुलना में अधिक कुशल है। वास्तव में, ड्रिप सिंचाई प्रणाली जल को लागू करने के लिए सबसे अधिक कुशल तकनीक है और मिट्टी में लवण और जलभराव को रोकता है, जो पारंपरिक प्रणाली का एक प्रमुख प्रतिबंध है। ड्रिप सिंचाई प्रणाली को सबसे उपयुक्त पानी की बचत तकनीक के रूप में माना जाता है, जो जल के चैनलों को समाप्त करता है, सिंचाई के अंतर्गत अधिक क्षेत्र लाता है और खरीदे गए आदान के उपयोग को कम करता है। ड्रिप सिंचाई में केवल पौधे की जड़ों के पास केवल बूंद–बूंद करके दिया जाता है, जहाँ इसकी आवश्यकता होती है और जिससे अधिक पानी की बचत होती है। सिंचाई की इस विधि से फसल की पैदावार सिंचाई के लिए उर्वरकों, पीड़कनाशकों और बिजली की लागत में अधिक कमी आती है। ड्रिप में, पानी सीधे पौधों के जड़ क्षेत्र में लगाये जाने के कारण उपभोग क्षमता में वृद्धि होती है। इस प्रकार ड्रिप सिंचाई जल की अधिक हानि, अपवाह और वाष्पीकरण के रूप में पारंपरिक नुकसान कम होता है। इस तकनीक के अन्य लाभ निम्न हैंः

उच्च फसल की पैदावारः एक विनियमित जल आपूर्ति अधिक उत्पादकता की ओर ले जाती है क्योंकि यह पानी की आवश्यकता का अनुकूलन करती है। अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि ड्रिप सिंचाई पद्धति भी फसलों की प्रारंभिक परिपक्वता और बेहतर गुणवत्ता में योगदान करती है।

उपलब्ध पानी का कुशल उपयोगः ड्रिप विधि के माध्यम से पानी का सटीक उपयोग सिंचाई को अधिक कुशल बनाता है, जो कि उन क्षेत्रों में महत्वपूर्ण है जहाँ पानी कम या महंगा है। यह वाष्पीकरण और अपवाह के माध्यम से पानी के नुकसान को भी कम करता है, जिससे सख्त मिट्टी जैसे कि क्रस्टिंग या झरझरा और रेतीले किस्मों का प्रबंधन करना संभव हो जाता है।

कम श्रम लागतः पानी, उर्वरक और शाकनाशियों के सटीक और माप अनुप्रयोग के कारण, श्रम और परिचालन लागत बहुत कम हो जाती है। ड्रिप प्रणाली का उपयोग करते हुए, एक किसान अपनी फसलों के लिए पोषक तत्वों और पीड़कनाशकों को अधिक सटीक रूप से लागू कर सकता है, जिससे उर्वरक लागत और नाइट्रेट नुकसान को कम किया जा सकता है।

मृदा स्वास्थ्य और भूजल स्वास्थ्यः चूंकि ड्रिप सिंचाई प्रणाली में उर्वरक अनुप्रयोग को विनियमित किया जाता है, जिससे लिचिंग द्वारा बहुत कम अपव्यय और प्रदूषण होता है। ड्रिप सिंचाई टिकाऊ है और अधिक खाद्य सुरक्षा और सामाजिक प्रगति प्रदान करती है। न केवल इसलिए कि परंपरागत सिंचाई सूखे की चपेट में है, बल्कि इसलिए भी क्योंकि अत्यधिक सिंचाई (पानी का अति–उपयोग) मिट्टी के लिए खराब है।

ड्रिप सिंचाई प्रणाली के अन्य विशिष्ट लाभों को सारणी 1 दर्शाया गया है। ड्रिप सिंचाई भारत में एक जबरदस्त क्षमता है। गन्ने और केले जैसे जाने–माने वाटर गार्डर्स सहित 80 से अधिक फसलों को भी ड्रिप सिंचाई के तहत लाया जा सकता है।

सारणी 1. बाढ़ सिंचाई पद्धति पर ड्रिप सिंचाई प्रणाली के लाभ

वस्तु/मापदंड	टपक सिंचाई विधि	बाढ़कृत सिंचाई विधि
पानी की बचत	उच्च, 40 और 100 प्रतिशत के बीच	कम, वाष्पीकरण की उच्च दर, सतह अपवाह और पृष्टीय स्रवण
परिवहन हानि	नगण्य	उच्च रिसना और रिसाव
सिंचाई क्षमता	80 – 90 प्रतिशत	30 – 50 प्रतिशत
इनपुट लागत	श्रम, उर्वरक, पीड़कनाशक और टाइलिंग पर कम खर्च	तुलनात्मक रूप से अधिक है।
खरपतवार की समस्या	लगभग शून्य	बहुत ऊँचा
उपयुक्त पानी	खारे पानी का भी प्रयोग किया जा सकता है	केवल सामान्य पानी का उपयोग किया जा सकता है
रोग और कीट	अपेक्षाकृत कम	उच्च
उर्वरक उपयोग की क्षमता	आपूर्ति को विनियमित करने के बाद से बहुत अधिक है	लीचिंग के कारण भारी नुकसान
जल भराव	शून्य	भारत में लगभग 8.5 मिलियन हेक्टेयर
पानी पर नियंत्रण	आसानी से विनियमित किया जा सकता है	ज्यादा नियंत्रण नहीं
लागत लाभ अनुपात (निवेशित प्रत्येक रुपये के लिए रुपये में अतिरिक्त राशि)	पानी की बचत को छोड़कर 1.3–13.3, पानी की बचत सहित 2.8 – 30.0	1.8 और 3.9 के बीच
उपज में वृद्धि	बाढ़ विधि की तुलना में 20–100 प्रतिशत अधिक है	ड्रिप की तुलना में कम

ड्रिप सिंचाई प्रणाली क्या है?

एक विशिष्ट ड्रिप सिंचाई प्रणाली में अपने जड़ क्षेत्र के पास सीधे पौधों को पानी और पोषक तत्वों की आपूर्ति करने के लिए पाइपलाइनों का एक नेटवर्क शामिल है। एक विशिष्ट ट्रिकल सिंचाई प्रणाली में एमिटर के अलावा निम्नलिखित घटक शामिल हैं।

मुख्य लाइनें

मुख्य लाइन सिंचाई जल और पोषक तत्वों की आपूर्ति को कई–मुख्य लाइनों को जल स्रोत से जोड़ती है। मुख्य लाइन उच्च घनत्व पॉलिथिलीन (एचडीपीई) पाइप या कठोर पीवीसी पाइप या किसी भी प्लास्टिक सामग्री से बना हो सकता है। आमतौर पर भारतीय खेतों के लिए लाइन का आकार 63 मि.मी. ओडी से 160 मि.मी. ओडी है।

उप–मुख्य लाइनें

उप–मुख्य लाइनें एक या दोनों तरफ कनेक्शन के माध्यम से पार्श्व लाइनों को सिंचाई जल और पोषक तत्वों की आपूर्ति करती हैं। यदि सतह के नीचे दबा किया जाए तो उप–मुख्य सरल हो सकता है। यह या तो मध्यम घनत्व पॉलीथीन या एचडीपीई या कठोर पीवीसी का बना हो सकता है। यह आमतौर पर एक क्षेत्र में सिंचाई प्रणाली को विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न फसलों के कारण या सिंचाई नियमन (शेड्यूलिंग½ के उद्देश्य से विभाजित करने हेतु उपयोग किया जाता है। पाइप का आकार 40 मि.मी. से 63 मि.मी. ओडी तक होता है।

पार्श्व रेखा

पार्श्व लाइन ड्रिप सिंचाई प्रणालियों का प्रमुख घटक है जो उप–मुख्य लाइनो से जुड़ता है और पौधों के पास पानी पहुँचाता है। उप मुख्य के लिए पार्श्व लाइनों का कनेक्शन ग्रोमेट के माध्यम से होता है। ये आमतौर पर 12 से 32 मि.मी. व्यास के होते हैं और एलडीपीई या एचडीपीई सामग्रियों से निर्मित होते हैं। इन लाइनों का उपयोग उत्सर्जकों के स्थिरता के लिए किया जाता है जिसके माध्यम से व्यक्तिगत पौधों को पानी की आपूर्ति की जाती

है। ड्रिप प्रणाली की कुल लागत का लगभग तीस प्रतिशत पार्श्व लाइन की लागत कम आती है। एमिटर पार्श्व पर पूर्व निर्धारित रिक्ति पर तय किए जाते हैं और बार्ब कनेक्शन, विलायक वेल्डेड `टी' संयुक्त या बार्ब जैसे विभिन्न पार्श्वों द्वारा पार्श्व से जुड़े होते हैं जो निरंतर पार्श्व पाइप में जुड़े होते हैं। इस प्रकार की प्रणाली जिसमें उत्सर्जक कांटेदार कनेक्शन के माध्यम से पार्श्व रेखाओं से जुड़े होते हैं, "ड्रिप ऑन लाइन" सिस्टम कहलाता है। इस प्रणाली में, उत्सर्जक पार्श्व रेखाओं पर प्रक्षेपित होते हैं। एक और प्रणाली जिसमें उत्सर्जक पार्श्व लाइनों के बाहर निकालना के साथ बनाया जाता है उसे ''ड्रिप इन लाइन'' सिस्टम कहा जाता है। विभिन्न प्रकार के उत्सर्जक (लंबे/छोटे / बेलनाकार/समतल) फसलों को सिंचित करने के लिए पूर्व निर्धारित रिक्ति पर सह–बाहर होते हैं। पार्श्व रेखाओं की लंबाई 50 से 100 मीटर तक होती है।

फिल्टर

निस्पंदन ड्रिप सिंचाई प्रणाली का एक अनिवार्य घटक है। निस्पंदन का उद्देश्य किसी भी निलंबित अशुद्धता से मुक्त पौधों को पानी की आपूर्ति करना है। निस्पंदन प्रणाली ड्रिप सिंचाई प्रणाली के मुख्य नियंत्रण प्रमुख का हिस्सा है। सिंचाई के लिए उपलब्ध जल की गुणवत्ता के आधार पर ड्रिप प्रणाली के साथ विभिन्न प्रकार के फिल्टर का उपयोग किया जाता है। आमतौर पर उपयोग किए जाने वाले कुछ फिल्टर हैं।

- ❖ रेत या मीडिया फिल्टर
- ❖ स्क्रीन फिल्टर
- ❖ डिस्क फिल्टर

ये फिल्टर विभिन्न आकारों और स्क्रीन या जाल के विभिन्न आकारों में उपलब्ध हैं और उनकी प्रयोज्यता जल की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। निस्पंदन प्रणाली के प्रमुख घटकों में से एक है इन फिल्टर की सफाई के लिए बैक वॉश की व्यवस्था। यह व्यवस्था स्वचालित प्रकार की हो सकती है जो फिल्टर या समय पर निर्भर होने के कारण दबाव में वृद्धि के कारण उत्पन्न हो सकती है।

मुख्य नियंत्रण शीर्ष

ड्रिप सिंचाई प्रणाली में एक नियंत्रण शीर्ष होता है। यह जल के स्रोत को ड्रिप प्रणाली के पाइपलाइन नेटवर्क से जोड़ता है। लागू किए गए जल के दबाव और मात्रा को नियंत्रित करना, सिंचाई के लिए निस्पंदन जल की आपूर्ति करना और पोषक तत्वों को जोड़ना नियंत्रण शीर्ष के कार्य हैं। कभी–कभी, अतिरिक्त दबाव नियंत्रण और माध्यमिक फिल्टर पार्श्व या उप–मुख्य के प्रवेश द्वार पर स्थित होते हैं। एक विशिष्ट नियंत्रण सिर के बुनियादी घटक हैं रेत और मीडिया फिल्टर, स्क्रीन फिल्टर, डिस्क फिल्टर, बैक वॉश फ्लशिंग व्यवस्था, मीटरिंग वाल्व, नॉन–रिटर्न वाल्व, उर्वरक टैंक, वैक्यूम वाल्व, तीन तरह से वाल्व के साथ दबाव गेज, दबाव ब्रेकर को कम करना वाल्व आदि एक अच्छी गुणवत्ता वाला प्राथमिक फिल्टर सभी नियंत्रण हेड प्रतिष्ठानों के लिए आवश्यक है। वापस धोने के लिए वाल्व के साथ एक रेत/बजरी फिल्टर सबसे अच्छा है, लेकिन स्वच्छ आपूर्ति के लिए जाल फिल्टर पर्याप्त हो सकता है।

फर्टिगेशन प्रणाली

ड्रिप सिंचाई प्रणाली में, उर्वरकों को सिंचाई के जल के साथ सीधे उस क्षेत्र में लगाया जा सकता है जहाँ अधिकांश पौधों की जड़ें विकसित होती हैं। इस प्रक्रिया को फर्टिगेशन कहा जाता है और यह फिल्टर से पहले प्रणाली के हेड कंट्रोल यूनिट में स्थापित विशेष उर्वरक तंत्र (इंजेक्टर) की सहायता से किया जाता है। सबसे अधिक लागू होने वाला तत्व नाइट्रोजन है। हालांकि, सब्जियों के लिए फॉस्फोरस और पोटेशियम के अनुप्रयोग आम हैं। ड्रिप सिंचाई में फर्टिगेशन एक आवश्यकता है, हालांकि अन्य सूक्ष्म सिंचाई प्रतिष्ठानों में नहीं, हालांकि यह अत्यधिक अनुशंसित है और आसानी से प्रदर्शन किया जाता है। सिंचाई प्रणालियों के माध्यम से उर्वरकों को लागू करने के लिए कई तकनीकों का विकास किया गया है और कई प्रकार के इंजेक्टर बाजार में उपलब्ध है। साधारण बंद टैंक और इंजेक्टर पंप दो मुख्य तकनीकें हैं। दोनों प्रणाली पानी के दबाव से संचालित होते हैं। इंजेक्टर पंप मुख्य रूप से या तो वेंचुरी टाइप या पिस्टन पंप होते हैं। बंद टैंकों को हमेशा एक बाईपास लाइन पर स्थापित किया जाता है, जबकि पिस्टन

पंपों को इन–लाइन या बाईपास लाइन पर स्थापित किया जा सकता है।

स्वचालित नियंत्रण प्रणाली

स्वचालित नियंत्रक अब ड्रिप सिंचाई प्रणाली का एक हिस्सा हैं, जो फूलों या विदेशी सब्जियों जैसे उच्च मूल्य वाली फसलों की व्यावसायिक और उच्च तकनीक की खेती के लिए उपयोग किए जाते हैं। इनमें कंट्रोलर, मृदा नमी सेंसर, मिनी कंप्यूटर और सोलनॉइड वाल्व शामिल हैं। मिट्टी की नमी की उपलब्धता से नियंत्रकों को संचालित या ट्रिगर किया जा सकता है। हालांकि, ये प्रणाली आमतौर पर किसानों द्वारा उपयोग किए जाने वाले ड्रिप प्रणाली के लिए उपयोग नहीं किया जाता है।

ड्रिप सिंचाई की प्रयोज्यता

ड्रिप सिंचाई को बाग और सब्जियों की फसलों में सिंचाई हेतु उपयोगी पाया है जहाँ पौधे का आकार प्रति इकाई क्षेत्र में पौधे की जनसंख्या को सीमित करता है। ड्रिप सिंचाई प्रणाली से बड़ी संख्या में फसलें उगाई जाती हैं। फसलें, जिन्हें दबावयुक्त सिंचाई प्रणाली में उगाया जाता है, निम्नलिखित हैं:

- **बाग हेतु:** अंगूर की फसलें जैसे अंगूर, सेब, अनार, नाशपाती, स्वादिष्ट फल (आड़ू, खुबानी, आलूबुखारा आदि), नट (बादाम, पिस्ता), केले, खजूर, जैतून, आम, अमरूद आदि।
- **सब्जियाँ**–टमाटर, हरीमिर्च, ककड़ी, सलाद, हरी मटर, फूलगोभी, भिंडी आदि।
- **पंक्ति और क्षेत्र की फसलें**–कपास, गन्ना, मक्का, मूंगफली और प्याज।
- अन्य–जामुन, तरबूज, अल्फाल्फा, फूल (कार्नेशन्स, हैडिओली और गुलाब) और अन्य सजावटी पौधे।

छिड़काव/स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणाली

दबावयुक्त सिंचाई का एक अन्य घटक स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणाली है जिसको सार्वभौमिक रूप से उच्च जल उपयोग दक्षता प्राप्त करने, फसल उत्पादकता में सुधार करने, उपज की गुणवत्ता, सिंचाई के पानी की बचत और श्रम लागतों को कम करने के लिए अपनाया जाता है। स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणाली जल अनुप्रयोग को वर्षा के रूप में छिड़काव/बौछार करती है। 25–30 प्रतिशत सतह विधि या सिंचाई की तुलना में स्प्रिंकलर विधि की समग्र दक्षता 65 प्रतिशत है। इससे सिंचाई के पानी की बचत होती है और खेत में पानी के समरूप अनुप्रयोग में सहायता मिलती है। स्प्रिंकलर प्रणाली को या तो सिंचाई के पानी के छिड़काव की व्यवस्था के आधार पर या उनकी पोर्टेबिलिटी के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। भारत में, घूमने वाले हेड पोर्टेबल प्रणाली का उपयोग सबसे अधिक किसानों द्व ारा किया जाता है।

एक विशिष्ट स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणाली में आमतौर पर मुख्य, उप–मुख्य और लेटरल, कपलर, स्प्रिंकलर हेड और अन्य सामान जैसे वाल्व, बेंड, प्लग, राइजर और फिटिंग के पाइप नेटवर्क होते हैं। प्रणाली में दबाव बनाने के लिए एक पंपिंग यूनिट की भी आवश्यकता होती है। पोर्टेबल पाइप लाइनें एचडीपीई से बनी हैं और त्वरित युग्मन उपकरणों से सुसज्जित हैं। स्प्रिंकलर घूर्णन या निश्चित प्रकार हो सकता है। एक स्प्रिंकलर सिस्टम में उपयोग की जाने वाली महत्वपूर्ण फिटिंग/सहायक उपकरण झुकना, टीज, रिड्यूसर, एल्बो, राइजर, प्लग और वाल्व हैं। ये त्वरित युग्मन व्यवस्था के साथ एचडीपीई से निर्मित हैं।

भारत में छिड़काव सिंचाई विधि

स्प्रिंकलर सिंचाई भारत में मध्य अर्द्धशतक तक कृषक समुदाय से परिचित नहीं थी। कई अन्य विकसित देशों की तुलना में भारत में स्प्रिंकलर सिंचाई का क्षेत्र बहुत कम है। पहाड़ियों के बागान मालिकों ने मानसून अवधि के शुष्क मौसम के मध्य शुष्क मौसम के दौरान चाय, कॉफी और इलायची की फसल की सिंचाई के लिए स्प्रिंकलर सिंचाई की शुरुआत की। सत्तर के दशक के मध्य में, मध्य प्रदेश में नर्मदा घाटी, हरियाणा के दक्षिणी हिस्से और राजस्थान के उत्तर पूर्व हिस्से में प्रगतिशील किसान विशेष रूप से गर्मी के मौसम में पानी की कमी की समस्याओं को दूर करने के लिए स्प्रिंकलर प्रणाली का उपयोग करने लगे। यह प्रणाली बाद में धीरे–धीरे हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और कर्नाटक राज्यों में बड़े क्षेत्र में फैल गयी। हालांकि,

पंजाब, उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे महत्वपूर्ण कृषि राज्यों में सिंचाई की स्प्रिंकलर प्रणाली का उपयोग सीमित है। स्प्रिंकलर प्रणाली द्वारा सिंचित क्षेत्र का लगभग 60 प्रतिशत क्षेत्र फसलों जैसे अनाज, दाल, तिलहन, कपास, गन्ना और सब्जियों के अधीन है, बाकी पश्चिमी घाट और उत्तर पूर्वी राज्यों में चाय, कॉफी, इलायची के बागानों के अंतर्गत आता है।

सहभागी दृष्टिकोण के माध्यम से एकीकृत जल बचत प्रौद्योगिकियां

एकीकृत जल बचत तकनीक जिसमें मौजूदा जल संचयन प्रणाली, छोटे पैमाने पर जल विकास तकनीक/प्रौद्योगिकियां (खुले कुओं का गहरीकरण), किसानों के खेत में लेजर भूमि समतल करना, भूमिगत पाइपलाइन प्रणाली के माध्यम से पानी का संचयन और स्प्रिंकलर, ड्रिप और वर्षा का उपयोग शामिल है। स्प्रिंकलर एवं ड्रिप सिंचाई प्रणाली किसानों की मदद से शुरू की जानी चाहिए। लेजर लेवलिंग एक सिद्ध कृषि–फार्म तकनीक है जो न केवल खेत की सिंचाई की जरूरतों को कम करती है बल्कि सिंचाई के समय को कम करने और पानी के उपयोग की क्षमता को बढ़ाने के लिए भी बहुत उपयोगी है। इससे 20–25 प्रतिशत सिंचाई पानी की बचत होती है। क्षेत्र में विभिन्न बिंदुओं पर हाइड्रेंट्स के प्रावधान के साथ पीवीसी या एचडीपीई से बने भूमिगत पाइपलाइनों के बिछाने से सिंचाई के पानी में 40 प्रतिशत की बचत और 30 हेक्टेयर क्षेत्र में सिंचाई के समय में 28 प्रतिशत की कमी हुई, जिसके परिणामस्वरूप सिंचित क्षेत्र में 45 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस तकनीक को सभी क्षेत्रों में अच्छी तरह से सिंचित क्षेत्रों में अनुशंसित किया जा सकता है ताकि पानी की दक्षता में सुधार हो सके। यह जल अनुप्रयोग को बढ़ाएगा और सहभागी दृष्टिकोण के माध्यम से दक्षता का उपयोग करेगा। एकीकृत जल बचत प्रौद्योगिकियों का उदाहरण मेवात क्षेत्र में है, जहाँ लेजर लेवलिंग, भूमिगत पाइपलाइन प्रणाली और स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणाली के माध्यम से गेहूँ और सरसों की फसलों की उपज में लगभग 25–35 प्रतिशत की वृद्धि हुई है और सिंचाई के पानी को 40–60 तक बचाने में सहायता मिली है। इस क्षेत्र में इन सभी हस्तक्षेपों से ऊपर के समग्र प्रभावों में शामिल हैं, वाहन क्षमता में 30 प्रतिशत वृद्धि और अनुप्रयोग दक्षता में 45 प्रतिशत की वृद्धि।

भारत में फसल की पैदावार, गुणवत्ता उत्पादन और सिंचाई के पानी में अधिक लाभ के कारण दबावयुक्त सिंचाई प्रणाली भारत में अधिक लोकप्रिय हो रही है। सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली के अंतर्गत क्षेत्र को बढ़ाने के लिए सरकार द्वारा, एजेंसियां, अनुसंधान संस्थान और निर्माता समान रूप से सभी स्तरों पर प्रयास किए जा रहे हैं। प्राकृतिक जल संसाधन को बचाने और फसलों के उत्पादन और उत्पादकता को बढ़ाने के प्रयासों को और अधिक परिष्कृत किया जा सकता है। भारत जैसे विकासशील देशों को अनुकूल अनुसंधान दृष्टिकोण विकसित करने पर अधिक ध्यान केंद्रित करना चाहिए। कम लागत वाली निस्पंदन इकाई, प्रजनन उपकरण और प्रणाली के अन्य सामानों को विकसित करके लघु/सीमांत किसानों के अनुरूप सूक्ष्म सिंचाई तकनीक विकसित की जा सकती है। साथ ही उत्पाद की गुणवत्ता और प्रणाली की लागत को संतुलित करने के लिए न्यूनतम मानक विकसित करने की आवश्यकता है। मानव संसाधन विकास गतिविधियों के लिए योजनाकारों के अधिक से अधिक उपयोग के कौशल के साथ–साथ स्थानीय स्तर पर इन उत्पादों का उत्पादन करने के लिए ग्रामीण उद्यमशीलता को विकसित करने की आवश्यकता है, यह ग्रामीण जनता के लिए रोजगार की संभावना भी उत्पन्न करेगा। निकट भविष्य में सूक्ष्म सिंचाई की तकनीक को बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है, इसलिए कौशल विकसित करने के लिए अधिक से अधिक ध्यान दिया जा सकता है, अब प्रणाली, रसायनों और अन्य उपकरणों के बारे में कैसे, समय–समय पर उपयोगकर्ताओं द्वारा खेती के दौरान आवश्यक है।

टमाटर वर्गीय फसलों का समेकित रोग प्रबन्धन

दिनेश सिंह
पादप रोग विज्ञान संभाग,
भा.कृ.अ.सं – भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली– 110012

फसलें जिसमें खाद्यान्य, तिलहन, दलहन, सब्जियों एवं फलों का उत्पादन लगातार बढ़ रहा है लेकिन इसके साथ–साथ रोग की समस्या भी लगातार बढ़ती ही जा रही है । सभी फसलों में विभिन्न प्रकार के रोग लगते हैं। जो फसलों की पैदावार के लिए एक जटिल समस्या है। फसलों मे रोग उत्पन्न करने के लिए बहुत से जैविक कारक जैसेः कवक, जीवाणु, विषाणु, फाइटोप्लाज्मा, सूत्रकृमि इत्यादि जिम्मेदार हैं जिनके कारण से इनके उत्पादन एवं उसकी गुणवत्ता में कमी आती है। उत्पादनोपरान्त, विशेष रूप से फलों एवं सब्जियों में हानि बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि सूक्ष्मजीवों के प्रभाव से ये शीघ्र सड़ने योग्य हो जाती हैं।

समेकित रोग प्रबंधन के छः मुख्य सिद्धान्त हैं जिनमें रोगकारकों को प्रक्षेत्र में प्रवेश करने से रोकना, रोग को बढ़ावा देने वाली परिस्थितियों से बचाना, ऐसे पौधों या प्रजातियों का चुनाव करना जिसमें रोग संक्रमण होने के बावजूद स्वस्थ बना रहे, रोग प्रबन्धन की विधियां जो रोग सक्रमण होने से पहले प्रयोग करना तथा संक्रमण होने के बाद, रोग नियन्त्रण विधियों का प्रयोग करना है। फसलों में रोगों के रोकथाम के लिए रसायनों का प्रयोग सबसे अधिक होता है।यह सत्य है कि हमारे पास विभिन्न फसलों की कई प्रजातियाँ है जो विभिन्न रोगों से सहिष्णु की क्षमता रखते हैं लेकिन वे प्रजातियाँ भी जलवायु परवर्तन के कारण फसलों को सुरक्षा प्रदान करने में अक्षम हो गए है. जलवायु परिवर्तन के प्रभाव से इन प्रजातियों की रोगों के प्रति सहिष्णुता समाप्त हो रही है। नाशीजीव रसायनों की दिन–प्रतिदिन बढते मूल्य एवं परोक्ष दुष्प्रभावों की वजह से प्रत्येक किसान पर इसका प्रयोग कम करना चाहता है। रोगकारकों में रसायनों के लिए प्रतिरोधी क्षमता विकसित होने से सभी रसायन की प्रभावशीलता कम होती जा रही है। रोगनाशी का उपयोग उसके लक्ष्य विहीन प्रभाव के कारण वर्ष दर वर्ष रोग जनक प्रभेदों में वृद्धि होती जा रही है। इस संदर्भ को ध्यान में रखते हुए एकीकृत रोग प्रबंधन का उपयोग टमाटर वर्गीय फसलों में अति आवश्यक है। इसकी पूर्ण सफलता के लिए एकीकृत रोग प्रबंधन के सभी तत्वों को सम्मिलित करके प्रत्येक वर्ष सभी किसानों को एक साथ मिलकर अपनाना अनिवार्य है।

इन रोगों के बचाव के लिए पहले रोग व इसके कारक को पहचानने के बाद फफूंदनाशकों का प्रयोग करना चाहिए। ध्यान रखना चाहिए कि इनके लगातार व अत्यधिक प्रयोग से कई नई समस्याए खड़ी हो सकती हैं, जैसे रसायन प्रतिरोधिता, खाने वाले फल व सब्जियों में इनके अवशेष, मिट्टी व पानी में मिलावट इत्यादि।

टमाटर के रोग

1. पछेता झुलसा

यह रोग फाइटोफ्थोरा इन्फेस्टन्स नामक कवक से होता है। यह रोग आलू की फसल के साथ–साथ टमाटर की भी फसल पर दिखाई देता है। रोग कारक कवक जड़ों को छोड़कर टमाटर के पौधों के सभी भागों को प्रभावित करता है। रोग के प्रारम्भिक लक्षण पत्तियों के किनारे पर हल्के हरे रंग के जलसिक्त धब्बे दिखाई देते हैं। ये धब्बें आद्र वातावरण में तेजी से बढ़ते है तथा पूरी पत्ती भूरे रंग की होकर मर जाती है। प्रातः काल पत्तियों को पलट कर देखने पर सफेद रंग की कवक वृध्दि आसानी से देखी जा सकती है। हरे फलों पर काले ग्रीस की तरह धब्बे उभरते है, ये धब्बे आपस में मिलकर पूरा फल सड़ा देते हैं जिससे सड़े अण्डे की तरह दुर्गन्ध आती है।

2. अगेती झुलसा

यह रोग आल्टरनेरिया सोलेनी नामक कवक के द्वारा होता है। रोग के लक्षण पत्तियों, तनों तथा फलों पर देखे

जा सकते हैं। रोग हमेशा पौधों की पुरानी पत्तियों से प्रारम्भ होता है। पुरानी पत्तियों पर छोटे–छोटे गोलाकार भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं तथा ये धब्बे पीले रंग के वलय से घिरे हुए होते हैं। पत्तियों पर ज्यादा संख्या में धब्बे पड़ जाने पर पूरी पत्ती पीली पड़ कर गिर जाती है। पौधों के तने पर ये धब्बे गहरे भूरे रंग के छोटे–छोटे सिकुड़े हुये आकार के होते हैं जैसे–जैसे ये धब्बे बढ़ते है धब्बे गोलाकार हो जाते हैं तथा धब्बों पर कवक वृध्दि की वलय आसानी से देखी जा सकती है। रोग हरे एवं पके फलों पर भी आक्रमण करता है। फलों, पर अपेक्षाकृत बड़े धब्बे दिखायी देते हैं जिन पर काली धूल के रुप में कवक के बीजाणु भी देखे जा सकते हैं, ऐसे संक्रमित फल अन्त में गिर जाते है।

3. बक आई रॉट

यह रोग *फाइटोफ्थोरा पैरासिटिका* नामक कवक से होता है। लम्बे समय तक गर्म एवं आद्र वातावरण तथा भूमि का उचित जल निकास का प्रबन्ध न होना, रोग फैलने में सहायक है। रोगी कवक केवल फलों एवं पत्तियों पर आक्रमण करता है। जो फल भूमि को छूते है, कच्चे व पक्के फलों पर भूरे रंग की चित्ती पड़ती है जो बाद में बढ़कर बड़ा धब्बा बन जाता है। फलों पर ये धब्बे वलय बनाते हुए बढ़ते है।

4. जीवाणु उकठा

यह रोग *रालस्टोनिया सोलॅनेशियारम* नामक जीवाणु से होता है। जीवाणु झुलसा से ग्रसित पौधे की कुछ नयी पत्तियाँ सर्वप्रथम मुरझाना प्रारम्भ करती है। पूरा पौधा पानी की कमी के कारण मुरझाता प्रतीत होता है। अन्त में पूरा पौधा मुरझा जाता है। यदि रोग का संक्रमण धीमा होता है तो पौधे में अपस्थानिक जड़ें निकल आती हैं। यदि ग्रसित पौधा सपाट काट कर दबाया जाये तो तने से पीले रंग का चिपचिपा जीवाणु श्राव निकलता है।

5. टमाटर का पीला पर्ण कुंचन

यह रोग टोमेटो यलो लीफ कर्ल वायरस से होता है। इस रोग का विषाणु रोगी पौधे से स्वस्थ पौधे तक सफेद मक्खी (*बेमिसिया टबॅकी*) द्वारा पहूँचाया जाता है। टमाटर का पौधा यदि शुरू में विषाणु से ग्रसित हो जाता है तो रोगी पौधा हरिमाहीन लिये बौना रह जाता है। संक्रमित पौधे की पत्तियों के किनारे या तो ऊपर की ओर कुंचित हो जाते हैं या नीचे की और बेलनाकार हो जाते हैं। ऐसे पौधों के फूल सामान्यतया गिर जाते है।

6. मूलग्रन्थि सूत्रकृमि

यह रोग *मिलेडोगाइन इनकागनीटा, मिलेडोगाईन जवानिका, मिलेडोगाइन हापला* नामक सूत्रकृमियों के द्वारा होता है। टमाटर की फसल में यह रोग सूत्रकृमि द्वारा उत्पन्न किया जाता है। जब सूत्रकृमि की संख्या मृदा में अत्याधिक हो जाती है तो रोगी पौधों के जड़ो का विकास कम होता है। पौधा अपनी आयु से पहले सूख जाता है ऐसे रोगी पौधों की वृध्दि कम होना, फल कम व छोटे आकार के होना, पौधों में कुपोषण आदि जैसे लक्षण उत्पन्न होते हैं। यदि संक्रमित पौधे को जड़ से उखाड़ कर निरीक्षण किया जाये तो जड़ो पर गाठें पायी जाती हैं।

टमाटर के रोगों का समेकित प्रबन्धन

टमाटर की फसलों में प्रमुख रुप से, पछेती झुलसा, अगेती झुलसा, स्क्लेरोशियम तना गलन, फ्युजेरियम क्राऊन व जड़ सड़न तथा उकठा, बक आई रॉट, जीवाणु धब्ब/झुलसा, शीर्ष कुंचन,मोजेक, पीला पर्ण कुंचन आदि रोग अधिक नुकसान पहुचाते हैं। इन रोगों की रोकथाम के लिए समेकित रोग प्रबन्धन की विधियों को अपनाने की आवश्यकता होती है। जिन्हें नीचे दिया गया है –

1. टमाटर की खेती हेतु रोगरोधी प्रजातियों का चयन करें।
2. किसी निश्चित क्षेत्र हेतु संस्तुत की गयी प्रजातियों, समय पर बुवाई, उचित दूरी, स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज, खरपतवार निकालना तथा सस्य क्रियाओं को समय–समय पर सम्पन्न करते रहें।
3. रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग संतुलित मात्रा में करना चाहिए। कभी भी नाइट्रोजन उर्वरक/वृद्धिकारक रसायनों का अधिक मात्रा में प्रयोग नहीं करना चाहिए।
4. यदि गत वर्ष खेत में टमाटर में रोगों का प्रकोप रहा हो तो गत वर्ष के फसल अवशेष एकत्र कर जलाकर नष्ट कर दें।

5. टमाटर के खेत को सदैव खरपतवार मुक्त करना चाहिए।
6. फसल में सूत्रकृमि का प्रकोप होने की दशा में 200 किग्रा. नीम की खली प्रति हे. की दर से पीसकर भूमि में मिलाना चाहिए।
7. बीजों को 200 पी.पी.एम. स्ट्रैप्टोसाइक्लिन के घोल से उपचारित करके बोयें।
8. टमाटर की फसल हेतु उचित जल निकास वाली मृदा का चुनाव करें।
9. खेत के चारों ओर 4–6 लाईन मक्का की बुवाई बाड़ फसल के रुप में करें जिससे कीटों का आक्रमण कम हो।
10. टमाटर की पौधशाला में भूमि का सौर्यीकरण गर्मी के मौसम में सफेद पालीथीन से ढक कर अवश्य करें।
11. खेत की गर्मी की जुताई करें, जिससे भूमि जनित कवकों एवं किटों की विभिन्न अवस्थायें नष्ट हो जायें।
12. गर्मी के मौसम में खेत में हरी खाद उगाकर (सनई अथवा ढैंचा) 45–60 दिन की हरी खाद की पलटाई करें तथा 10–15 दिन बाद 5 किग्रा. प्रति है. की दर से जैव नियन्त्रक को मिलायें।
13. मोटे अनाज वाली फसलों कम से कम 2–3 वर्ष का फसल चक्र (टमाटर कुल की फसलों को छोड़कर) अपनाना चाहिये।
13. 20–25 किग्रा प्रति हे. की दर से कार्बोफ्यूरान दानेदार दवा को भूमि में मिलायें ।
14. टमाटर के पौधों को लकड़ी का सहारा देकर सीधा खड़ा करें जिससे पौधों को पूर्ण रुप से प्रकाश मिले एवं फल भूमि को न छुये।
15. विषाणु जनित रोगों से ग्रसित पौधों को खेत से उखाड़कर जलाकर नष्ट कर दें।
16. रोगों का जैव नियन्त्रक जैसे ट्राइकोडर्मा हर्जियानम व स्यूडोमोनास फ्ल्युरोसेन्स के रूप भूमि में बहुत लाभकारी है। बीज उपचार – 10 ग्राम जैव नियन्त्रक को प्रति कि.ग्राम बीज की दर से प्रयोग करना चाहिऐ। पौधे उपचार – 10 ग्राम जैव नियन्त्रक को प्रति ली. पानी के साथ घोल लें इस घोल में टमाटर की पौध को 30 मिनट तक उपचारित करें। मृदा उपचार – 2.5 कि. ग्राम. जैव नियन्त्रक को 2.5 कि.ग्रा. गोबर की खाद में मिलाकर प्रति है. की दर से खेत में मिलायें। छिड़काव – 5 ग्राम जैव नियन्त्रक को प्रति ली. पानी में घोल बनाकर फसल पर छिड़काव करें। कम्पोस्ट के द्वारा – 1 कि.ग्राम जैव नियन्त्रक को 50 किलो गोबर की खाद या वर्मी कम्पोस्ट में मिलाकर छाये वाले स्थान पर ढेर बना लें। 3–4 दिन के बाद मिश्रित गोबर की खाद को प्रति एकड़ की दर से जमीन पर फैलाए।
17. जीवाणु से संक्रमित फसलों पर 200 पी.पी.एम. स्ट्रैप्टोसाइक्लिन के घोल का छिड़काव करें, इसके 15 दिन बाद 0.3 प्रतिशत कापर ऑक्सीक्लोराइड के घोल का छिड़काव करें।

बैंगन के रोग

1. फोमॉप्सिस अंगमारी तथा फल सड़न

यह रोग *फोमॉप्सिस वैक्सैन्स* फफूँद द्वारा जनित होता है। पौधशाला में इस रोग के संक्रमण से पौध पर कमरतोड़ के लक्षण दिखाई देते हैं। खेत में रोपाई के बाद भूमि के सम्पर्क में आने वाली पत्तियों पर नियमित गोल, भूरे धब्बे बनते हैं जिनके केन्द्रीय भाग हल्के रंग का होता है। पुराने धब्बों पर काले रंग के अनेक फफूँद पिक्निडियम देखे जा सकते हैं। रोगी पत्तियां पीली पड़ कर गिर जाती हैं। इस रोग के लक्षण तनों पर लम्बे भूरे धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं जो तेज हवा के झोंको से टूटकर गिर सकते हैं। फलों पर पनीले धब्बे बनते हैं जो धंसे हुए होते हैं। इन धब्बों पर पिक्निडियम भी बनते हैं तथा फल के अंदर का भाग सड़ जाता है।

2. स्क्लेरोटिनिया म्लानि

यह रोग *स्क्लेरोटिनिया स्क्लेरोशियोरम* नामक कवक से होता है। इस रोग के लक्षण पौधों में पुष्पक्रम के पास गोलाकार से लम्बवत जलीय, विक्षतियों के रूप में दिखाई देते हैं जो बाद में जलीय मृदु विगलन की तरह दिखते हैं। संक्रमण बिन्दु पर सूखे बदरंग के धब्बे विकसित होते हैं, जिसके फलस्वरूप वे ऊतकक्षयी हो जाते हैं। यदि संक्रमण तने के आधार पर होता है तो पूरे पौधे की म्लानि हो जाती

है। कभी–कभी इस रोग से कुछ शाखाएं प्रभावित होती हैं तो आंशिक में म्लानि कहते हैं। ठण्डे एवं आर्द्र मौसम में, रोगकारक के कवकजाल पौधे से भूमि के ऊपरी भाग से बाहर निकलते हैं और क्रीमी रंग के स्क्लेरोशिया बनते हैं जो बाद में काले रंग के हो जाते हैं। अधिक नमी की अवस्था में पौधे के प्रभावित भाग पर सफेद कवक की वृद्धि दिखाई देती है। रोगकारक फलों को भी संक्रमित करते हैं। फलों के विगलन भाग पर बहुत से स्क्लेरोशिया दिखाई पड़ते हैं। संक्रमित तने को फाड़ने पर बहुत से स्क्लेरोशिया ऊतकों में दिखाई देते हैं।

3.छोटी पत्ती रोग

यह रोग फाइटोप्लाज्मा द्वारा होता है जो पौधों की जड़ों के फ्लोएम कोषिकाओं में पाया जाता है। इस रोग के रोग वाहक कीट जैसिड़ (*हिसीमोनस, फीसीटीस*) होता है। इस रोग से पौधों की पत्तियां छोटी, पतली तथा हल्की हरी हो जाती हैं। बाद में आने वाली पत्तियों का आकार और छोटा हो जाता है। रोगी पौधे झाड़ीनुमा दिखाई पड़ते हैं और उनमें फूल नहीं बनते हैं। यदि बनते भी है तो हरे रंग के हो जाते हैं। फल बिलकुल नहीं बनते हैं। संक्रमण के बाद फलों की वृद्धि रूक जाती है और वे सख्त हो जाते हैं तथा पकते नहीं हैं। फाइटोप्लाज्मा बहुत से खरपतवारों जैसे धतूरा, *विन्का रोजिया* पर जीवित शेष रहता है। लगातार रोगग्राही किस्मों को लगाना, खरपतवारों, शकरकन्द या टमाटर का मुख्य फसल के पास लगाने पर रोग वाहक कीटों की संख्या बढ़ जाती है, जो रोग को फैलाने में सहायता करते हैं।

प्रबंधनः रोग का प्रबंधन निम्नलिखित विधियों को अपनाकर किया जा सकता हैः रोगी पौधों, खरपतवारों (धतूरा, विंका रोजिया) को खेत से निकालकर नष्ट कर दें। रोग वाहक कीटों के नियंत्रण के लिए आक्सीमिथाइल डिमेटान (मेटासिस्काक्स), डामेथोएट (रोगोर) कीटनाषी का एक लीटर एक हजार लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टेयर की दर से फसलों पर छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार 15–20 दिन के अंतराल पर 3–4 बार छिड़काव करें।

बैंगन के रोगों का समेकित प्रबन्धन

1. रोगग्रस्त पौधों के अवशेषों को इक्ट्ठा करके नष्ट कर दें।
2. रोगी पौधों, खरपतवारों (धतूरा, विंका रोजिया) को खेत से निकालकर नष्ट कर दें।
3. कम से कम 2–3 साल का फसल–चक्र अपनाएं, जिसमें धान एवं मक्का आदि फसलों को सम्मिलित करें।
4. गोबर की सड़ी खाद का प्रयोग करें।
5. गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें।
6. स्वस्थ बीज का प्रयोग करें तथा बीज का उपचार कैप्टान 2.0 ग्रा./ली. से करें।
7. छोटी पत्ती रोग प्रतिरोधी किस्में जैसे पूसा पर्पिल क्लस्टर, ओसी मंजरी, गोटा, चकलासी डोली, डोली–5, सी.एच. बी.आर.–3, डी.बी.एस.आर.–44, डी.बी.एस.आर.–91–2, एन.डी.बी.एच.–8, एच.ओ.ई.–414, जे.बी.–64–2, पी.बी. एस.–12–1 को उगाएं।
8. कार्बेन्डाजिम (2.0 ग्रा./ली.), मैन्कोजेब 2.0 ग्रा./ली.एवं थायोफेनेट मिथाइल (1.0 ग्रा./ली.) या मैन्कोजेब 2.0 ग्रा./ली. + कार्बेण्डाजिम 2.0 ग्रा./ली. का छिड़काव 10–12 दिन के अंतराल पर करें।
9. रोग वाहक कीटों के नियंत्रण के लिए आक्सीमिथाइल डिमेटान (मेटासिस्काक्स), डामेथोएट (रोगोर) कीटनाशी का एक लीटर एक हजार लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टेयर की दर से फसलों पर छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार 15–20 दिन के अंतराल पर 3–4 बार छिड़काव करें।

शिमला मिर्च तथा मिर्च के रोग

1. सर्कोस्पोरा पत्तों का धब्बा

यह रोग *सर्कोस्पोरा कैपसिसी* फफूँद द्वारा जनित होता है। पत्तियों पर गोल–गोल धब्बे बन जाते हैं जिनके किनारे भूरे रंग के तथा केन्द्र धुंध्ले रंग के होते हैं। पत्तियों पर जब काफी धब्बे बन जाते हैं तो ग्रस्त पत्तियां पीली पड़ जाती हैं तथा समय से पहले जमीन पर गिर जाती हैं।

2. श्यामवर्ण तथा फल विगलन

यह रोग *कोलेटोट्राइकम कैप्सिकी* फफूँद द्वारा जनित होता है।यह रोग बीज फसल में ज्यादा संक्रमण करता है।

इस रोग की दो अवस्थायें हैं। विकसित पौधें की टहनियां ऊपर से नीचे की ओर सूखने लगती हैं तथा उनका रंग भी भूसे जैसा हो जाता है। रोग ग्रस्त टहनियों पर फफूँद के काले बिन्दू उभर आते हैं। फल जब लाल होने लगते हैं तब उन पर छोटे, काले तथा गोल धब्बे दिखाई देते हैं। ये धब्बे फल की लम्बाई में बढ़ते हैं। नमी वाले वातावरण में इन फलों पर गुलाबी फफूँद दिखाई पड़ती है। रोगग्रस्त फलों में पनप रहे बीजों का रंग भी बदल जाता है तथा ताँबे जैसा हो जाता है।

3. पर्ण कुंचन

संक्रमित पौधों की पत्तियां नीचे की ओर मुड़ जाती हैं। पत्तियां छोटी, जो बाद में हल्की–पीली हो जाती हैं। पुरानी पत्तियां पपड़ी की तरह तथा भुरभुरी हो जाती हैं। रोग ग्रसित पौधे छोटे होते हैं तथा उन पर फल लगना बन्द हो जाता है और यदि लगता भी है तो वह कुरूप हो जाता है।

शिमला मिर्च तथा मिर्च के रोगों का समेकित प्रबन्धन

1. रोगी पौधें के अवशेषों को इक्ट्ठा करके नष्ट कर दें।
2. फसल चक्र अपनायें।
3. खेत में पानी निकास का उचित प्रबन्ध करें।
4. स्वस्थ बीज का प्रयोग करें। बीज का उपचार कैप्टान 0.3 प्रतिशत बीज से करें।
5. पौधें पर कार्बेण्डाजिम 0.1 प्रतिशत/ 2 ग्राम प्रति लीटर या थायोफिनेट मिथाईल 0.1 प्रतिशत/ 2 ग्राम प्रति लीटर या डाइफेनकोनाजोल 0.05 प्रतिशत का 10–14 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।
6. रोग रोधी किस्मों जैसे पेरेनियल, बीजी–1, लोराई, पंजाब लाल, जे.सी.ए.–196, पंजाब सुर्ख, डी.सी.–18, पूसा सदाबहार, पन्त सी–2, जवाहर मिर्च–2, सूर्यामुखी तथा जापानी को लगाएं।
7. अगस्त मास में पौधें पर मैन्कोजेब + कार्बेन्डाजिम का छिड़काव करें तथा 10–14 दिन के अन्तराल पर पुनः करें।
8. निम्बेसीडीन (1 मि.ली./लीटर पानी) या नीम अलज (1.5 मि.ली./लीटर पानी) का प्रयोग दूसरे कीटनाशक के विकल्प के रूप में किया जा सकता है। ट्राइजोफॉस, 40 ईसी (1.5 मि.ली./लीटर पानी), नीमार्क (5 मि. ली./लीटर पानी) आदि का एक के बाद एक का नर्सरी में पौध तथा मुख्य खेत में 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

समेकित रोग प्रबन्धन की तकनिकी द्वारा ही सब्जियों में रोगों का समाधान दूरगामी परिवेश के लिए सर्वथा उचित है। समेकित रोग प्रबन्धन के लिए निम्नलिखित विशेष बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता है ।

1. मिट्टी लाभदायक एवं हानिकारक दोनों तरह के सूक्ष्म जीवों का भण्डार है। अतः मिट्टी के स्वास्थ्य का निम्न क्रियाओं द्वारा समुचित प्रबंधन करना चाहिए। जैसे–समय से भूपरिष्करण, गर्मी की जुताई, हरी खाद का प्रयोग, अनुकूल कार्बन नाइट्रोजन अनुपात, संतुलित पोषक तत्व एवं समुचित वायु प्रवाह इत्यादि ।
2. नाशीजीव प्रबंधन का विवेकपूर्ण प्रयोग करें एवं अमिश्रणीय जीवनाशियों, पादप वृद्धि हारमोन्स एवं सूक्ष्म तत्वों को एक साथ न मिलायें ।
3. बीज का स्वास्थ्य आवश्यक रुप से मानक स्तर तक होना चाहिए। सुनिश्चित तौर पर बीज वाह्य एवं आन्तरिक बीजोद्भिद रोगकारकों, संक्रमित फसल अवशेषों एवं स्कलेरोसियम से मुक्त होना चाहिए ।
4. संक्रमित फसल अवशेषों को इकट्ठा करके जलावें, एकान्तरित एवं सजातीय खरपतवार नियंत्रण की समुचित व्यवस्था करें जिससे खेत में रोग कारक का उन्मूलन हो सके ।
5. मिट्टी से उत्पन्न रोगों के प्रबंधन के लिए फसल चक्र एक महत्वपूर्ण युक्ति है इसके लिए किसी रोग कारक विशेष के लिए अपोषक फसलों का चयन करें।
6. बेमौसमी सब्जी की खेती को निरुत्साहित करना चाहिए क्योंकि ऐसा नहीं करने पर रोगकारकों का जीवन चक्र टूटता नहीं है और उनकी की जीवन दर बढ जाती है।
7. नाशीजीव प्रबंधन के विभिन्न उपायों के उचित एवं अनुकूल प्रयोग हेतु रोगकारक के जीवन चक्र का ज्ञान बहुत महत्वपूर्ण है। अधिकतम् लाभ हेतु प्रबंधन उपायों का प्रयोग जीवन चक्र की क्रान्तिक अवस्था पर किया जाय।

8. विस्तृत प्रभाव वाली कवकनाशियों का चयन, उचित मात्रा, छिड़के जाने वाले पादप भाग, छिड़काव की विधि एवं बूँदों का आकार इत्यादि का ज्ञान रखा जाय, क्योंकि यह कवकनाशी की प्रभावशीलता को प्रभावित करते हैं।
9. हरी खाद, सड़ी हुई गोबर की खाद के साथ या अन्य किसी कार्बनिक तत्व के साथ जैविक कवकनाशियों का मिट्टी में प्रयोग को बढावा देना चाहिए। साथ ही साथ इन जैव कवकनाशियों के लिए अदुष्प्रभावी कवकनाशियों का भी प्रयोग करना चाहिए।
10. हमेशा रोग सहनशील संकर प्रजातियों को उगाना चाहिए। संकर प्रजातियों में रोग सहनशीलता एवं बीज जनित रोगों का सही ज्ञान करके ही लगावें।
11. तुड़ाई के पश्चात् सब्जियों का समुचित प्रबन्धन करना चाहिए जिससे सब्जियों को सड़ने एवं उनके बीजों को संक्रमण से बचाया जा सके।
12. एकीकृत रोग प्रबंधन की सफलता तभी संभव है, जब सभी किसान सामूहिक रुप से मिलकर एक साथ सभी प्रबंधन क्रियाएँ आसपास के सभी खेतों में करें।

कोरोना (कोविड–19 के बारे में किसानों को सलाह)

कोरोना (कोविड–19) के गंभीर फैलाव को देखते हुए किसानो को सलाह है कि तैयार सब्जियों की तुडाई तथा अन्य कृषि कार्यों के दौरान भारत सरकार द्वारा दिये गये दिशा निर्देशों, व्यक्तिगत स्वच्छता, मास्क का उपयोग, साबुन से उचित अंतराल पर हाथ धोना तथा एक दूसरे से सामाजिक दूरी बनाये रखने पर विशेष ध्यान दें

कृषि के विकास में बीज का महत्व

सुजाता सिंह यादव एवं अंशुल आर्य
पादप रोगविज्ञान विभाग
गोविंद बल्लभ पंत कृषि और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर–263145

भारत एक कृषि प्रधान देश हैं। जिसमे 52% जनसंख्या को कृषि में रोजगार प्राप्त है तथा राष्ट्रीय आय में 17.8% कृषि का योगदान है। कृषि का उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ाने तथा किसानों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को सुधारने हेतु सरकार द्वरा विभिन योजनाओं के माध्यम से सस्ते दर पर खाद, उर्वरक, बीज, तकनीकी, अभियन्त्र, सिंचाई एवं तकनीकी ज्ञान दिया जा रहा हैं।

किसानों की आर्थिक स्थिति सुधारने, उत्पादन लागत घटाने तथा उत्पादन बढ़ाने के लिए योजनबद्ध योजनाओं क्रियान्वयन किया जा रहा है। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (NFSM) राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (RKVY), बीज ग्राम परिवहन अनुदान, संकर बीज उत्पादन इन्फ्रास्ट्रक्चर एवं बीज उत्पादन निजी सहभागी आदि योजनाओं का कार्यान्वयन किया जा रहा हैं। इसका मुख्य उदेश्य खेती में उपयोग होने वाले बीज सस्ते एवं प्रचुर मात्रा में उपलब्ध कराना व नई प्रजाति (10 वर्ष से कम) का उत्पादन उसी क्षेत्र में कराना है। जिसमें किसानों की भागीदारी, गोदाम की व्यवस्था, उत्पादन एवं प्रोसेसिंग की सुविधा हो। इससे अधिकतम बीज बदलाव दर होने पर उत्पादन बढ़ेगा ताकि उत्पादन लागत कम होने पर किसानों की बचत बढ़ेगी, किसानों एवं कृषि में कार्य करने वाले की खरीदने की क्षमता बढ़ाने पर देश की आर्थिक स्थिति में सुधार होगा।

कृषि के सुधार में गुणवत्ता युक्त बीज एक महत्वपुर्ण अवयव है गुणवत्तायुक्त बीज सस्ता एवं समय सुलभ कराने हेतु सरकार विभिन्न स्तरों पर अनुदान के माध्यम से सहायता प्रदान कर रही हैं।

संरचनात्मक संसाधनः गुणवत्ता युक्त बीज उपलब्ध करने के लिय सरकार के द्वरा संरचनात्मक संसाधन उपलब्ध कारने हेतु अनुदानित दर पर निर्माण की योजनाओं का संचालन किया जा रहा है।

- **गोदाम निर्माण योजनाः** इस योजना के तहत किसानों की बीज गोदाम निर्माण हेतु सरकार अनुमानित दर पर सहयोग देती हैं जिसमें बीज एवं अनाजों को रखने की सुविधा प्रदान की जा रही है।
- **सीड प्रोसेसिंग प्लांट का निर्माणः** क्षेत्रीय कृषि से जुड़े उघोगों को प्रोसेसिंग प्लांट उगाने तथा बीज उत्पादन, विपणन कार्य हेतु सहयोग 25 लाख तक दिया जाता है। बिहार राज्य मे 8 सीड प्रोसेसिंग प्लांट लगाये जा चुके हैद्य जो बीज उत्पादन में राष्ट्रीय बीज निगम लिमिटेड, पटना के साथ मिलकर कार्य कर रहे हैं।

शोध– नई प्रजाति की खोज पादप प्रजनन प्रोग्राम के माध्यम से किया जाता है जो हमारे पास उपस्थित विभिन्न जननद्रव्य की गुणवत्ता पर निर्भर करता है जिसमें अधिक उपज वाली प्रजाति में (जननद्रव्य) पादप प्रजनन करके रोगरोधी एवं अधिक उपज वाली प्रजाति बनाई जाती है, इसमे 6–7 वर्ष लगते हैं। इसका मूल्यांकन, उपज, रोगरोधी गुणवत्ता के आधार पर जांच हेतु बहूस्थान परीक्षण किया जाता है। उसके बाद स्थानीय स्तर पर उपलब्ध प्रजाति से अधिक उपज प्राप्त होने पर उसे उस क्षेत्र के लिए विकसित किया जाता हैं। सामान्यता नई प्रजाति का उसके पूर्व विकसित प्रजाति के साथ आंकलन किया जाता हैं। अधिक उपज प्राप्त होने के साथ 2–3 वर्ष परीक्षण किया जाता हैं। संकर बीज उत्पादन में नर एवं मादा पौधों का विशेष महत्व होता हैं। जिसका चुनाव जननद्रव्य के मूल्यांकन में किया जाता हैं जननद्रव्य का गुण है। उसी के आधार पर संकरण योजना बनाई जाती हैं। संकरण योजना में नर एवं मादा पौधों के चुनाव में विशेष ध्यान दिया जाता है। तथा उससे प्राप्त संकर का मूल्यांकन विभिन्न स्तरों पर किया जाता हैं।

1. **प्रारंभिक संकर परीक्षणः** इसमें एक पटरी, 4 मीटर लम्बी पटरी में F1 संकर के साथ, नई संकर एवं बाजार में अच्छी उपज देने वाले सीमेंट के साथ लगाकर, उपज एवं गुणवत्ता के आधार पर चुनाव करते हैं, जांच से प्राप्त संकर को आगे परीक्षण करते हैं।
2. **उन्नत संकर परीक्षणः** प्रारंभिक संकर परीक्षण से चुनिँदा संकर को दो पटरी तथा बाजार में उपलब्ध अच्छी प्रजाति के साथ जांच करते हैं, अच्छी रोगरोधी वाली संकर को आगे जाँच हेतु लें जाती हैं।
3. **अनुसंधान और विकास प्रदर्शनः** विकसित संकर परीक्षण से चुनिँदा संकर के साथ बाजार में चार मिटर लंबी पटरी में लगाकर जांच करते है।
4. **बहूस्थान परीक्षणः** अनुसंधान और विकास प्रदर्शन से चुनिँदा संकर को बहूस्थान परीक्षण में चार पटरी में लगाकर चार प्रत्युत्तर के आधार पर रोग, उपज गुणवत्ता के आधार पर चुनाव करते है, अच्छी संकर को आगे पटरी परीक्षण में जांच करते है।
5. **पटरी परीक्षणः** बहूस्थान परीक्षण से चुनाव किए गए संकर को पटरी परीक्षण में किसान के खेत में लगाकर 4–5 संकर को साथ में लगाकर चुनाव करते हैं, इससे सांकेतिक अंक होता हैं, अच्छी संकर का बीज उत्पादन एवं प्रदर्शन परीक्षण का करते हैं।
6. **प्रदर्शनः** पटरी परीक्षण से चयनित संकर को नाम देकर अधिक मात्रा में किसानों एवं बीज विक्रताओं को देखने हेतु प्रदर्शन परीक्षण किया जाता हैं।
7. **उत्पाद का विकासः** शोध में प्राप्त गुणवत्तायुत्त नई प्रजातिध संकर जो प्रजनक अनुसंधान और विकास प्रदर्शन के बाद का कार्य हैं। संकर का मूल्यांकन, लोकेशनवार, अधिक उपज वाली संकर के साथ जांचना एवं मूल्यांकन करते हैं। इसमे स्थानीय तथा सेगमेंटवार प्रजाति मांग होने पर बीज का उत्पादन कराकर, विपणन कार्य किया जाता है। प्रदर्शन का मूल्यांकन विपणन अधिकारी व स्थानीय व्यापारी एवं किसान द्वारा सम्मेलन करके देखा जाता हैं। जिसे अधिक से अधिक मात्रा में विपणन किया जाता हैं।

उत्पादनः बीज उत्पान एक जटिल प्रक्रिया हैं। गुणवत्तायुत्त प्रचुर मात्रा में बीज उत्पादन, प्रोसेसिंग, पैकिंग व नमीयुत्त क्षेत्र में गुणवत्ता बनाये रखना, एक चुनौती पूर्ण प्रक्रिया हैं। सरकार बीज बदलाव दर को ध्यान में रखकर विभिन्न स्तर बीज पर उत्पादन करा रहे हैं।

1. **सरकारी संस्थानः** राष्ट्रीय बीज निगम व राज्य बीज निगम जो बीज उत्पादन एवं विपणन कार्य कर रहे है।

2. **बीज ग्राम योजनाः** इस योजना के अंतर्गत किसानों को आधार बीज उपलब्ध कराकर किसानों से बीज उत्पादन किया जाता हैं वे किसान अपने खेत में बीज उत्पादन कर, अपने तथा अपने आस–पास गाँव के किसानों को बीज दे कर समय उपयोग करेंगे, जिससे नए बीज से उत्पादन बढ़ेगा, उत्पादन लागत कम होगी।

3. **सरकारी एवं निजीः** पक्ष को बीज प्रोसेसिंग यंत्र अनुदानित दर पर लगाने में सहयोग दे रहे हैं, जिससे उस क्षेत्र में बीज उत्पादन क्षमता बढ़ जाएगा जिसे वे स्वंम बेचेंगे या किसी अन्य संस्थान के लिए बीज उत्पादन करेंगे, जिससे उस राज्य एवं क्षेत्र में बीज की उपलब्धता बढ़ जाएगी।

बीज उत्पादन बढ़ाने हेतु सरकार प्रमाणित बीज उत्पादन पर अनुदान देती हैं। सरकारी बीज बदलाव दर एवं प्रजाति बदलाव दर बढ़ना चाहती हैं, शोध संस्थान द्वारा नई विकसित प्रजाति का किसानों को लाभ मिल सकें। इससे लिए केवल दस वर्ष से अंदर के प्रजाति पर अनुदान दिया जा रहा हैं। इसका बीज उत्पादन बढ़ाने के लिए सरकारी संस्थान, निजी संस्थान तथा बीज ग्राम को सरकार बढ़ावा दे रहे हैं। नई प्रजाति का अधिक उत्पादन एवं उपयोग हो, इसके लिए 10 वर्ष से कम के प्रजाति के उत्पादन एवं विपण न पर सरकार द्वारा अनुदान का प्रावधान किया गया हैं। बिहार राज्य बीज उत्पादन में नहीं के बराबर भागीदारी थी, परन्तु विगत 3–4 वर्षों में उत्पादन के क्षेत्र में अग्रसर हुआ हैं। सरकारी कंपनी राष्ट्रीय बीज निगम एवं बिहार राज्य बीज निगम बिहार राज्य में किसानों के साथ मिलकर बीज उत्पादन का कार्यकर रहे हैं। क्षेत्रीय बीज उत्पादन एवं सरकारी संस्थान से मिलकर उत्पादन का कार्यकर रहे हैं। बिहार राज्य में लगभग 7–8 बीज प्रोग्रेससिंग प्लांट लगाए गए हैं, जो बीज उत्पादन का कार्य कर रहे हैं। प्रमाणित

बीज उत्पादन में आधार बीज तथा नई प्रजाति 10 वर्ष से कम की महत्वपूर्ण भूमिका हैं, स्थानीय उत्पादन, स्थानीय विपणन को प्रथिमिकता दिया जाए, क्योंकि दूसरे राज्य से बीज जाने– आने में समय अधिक लगता हैं, जिससे बीज की कीमत बढ़ जाते हैं, इसके लीये जिला एवं प्रदेश की 2–3 वर्ष में बीज की मांग का आकंलन, सरकारी योजनाओं में प्रजाति की मांग तथा व्यापारी की अग्रिम बुकिंग तथा मिनिकिट व शोध संस्थानों के प्रतिपुष्टि के आधार पर बीज उत्पादन की मात्रा का निर्धारण किया जाता हैं, तथा प्रजाति के उत्पादन क्षेत्र का चुनाव उस प्रजाति के उपयुत्त जलवायु, एवं उपयुत्त क्षेत्र, उपलब्ध संसाधन, (प्रोसेसिंग प्लांट, गोदाम, उत्पादन क्षमता व तकनीकी ज्ञान) के आधार पर किया जाता हैं। बीज उत्पादन में बीज उत्पादक एवं उत्पादन कराने वाली संस्था के साथ एक करारनामा होता हैं, जिसमें प्रजाति, मात्रा, बीज तैयार होने का समय अंकित कार्य के करारनामा के अनुरूप संपादित किया जाता हैं।

गुणवत्ताः बीज एक सजीव उत्पाद हैं जिसकी गुणवत्ता एवं जीवन क्षमता बनाए रखना जटिल प्रक्रिया हैं, जिसमें आध ाार बीज के स्त्रोत से लेकर किसानों के खेत तक शुद्धता का मापन, निर्धारित मानको पर किया जाता हैं। आधार बीज का स्त्रोत प्रामाणिक संस्थान होना चाहिए, किसानों, बीज उत्पादन के प्रति जागरूक हो, पूर्व में उसी फसल का उत्पादन नहीं किया गया हो तथा अलगाव दूरी मानक के अनुरूप हो, फूल आने के पूर्व तथा बाली आने पर अन्य प्रजाति के पौधों का अलगाव, अवश्य किया गया हो, रोग कीट व उपज का आंकलन होना चाहिए, उपज आंकलन के अनुरूप उत्पादन से बीज लेने चाहिए, गोदाम में बीज प्रजातिवार, व लाट नंबर के हिसाब से रखा होना चाहिए, उसकी सफाई, गोदाम की सफाई व दवा छिड़काव समय से करें। आधार बीज के गुणवत्ता के लिए स्त्रोत देखते हैं, तथा किसान के खेत में शुद्धता के लिए प्रक्षेत्र निरीक्षण, बीज प्रमाणीकरण अजेंसी एव उत्पादन कराने वाली संस्था निरीक्षण करते हैं। बीज की गुणवत्ता एवं बीज का आकार समान होने के लिए सीड प्रोसेसिंग प्लांट से प्रोसेसिंग किया जाता हैं, प्रोसेसिंग की शुद्धता एवं अंकुरण क्षमता जांच हेतु प्रोयोगशाला में नमूना भेजा जाता हैं जिसमें मानक के अनुरूप पाए जाने पर ही बीज प्रमाणीकरण एवं विपणन का कार्य सम्पन्न होता हैं।

बीज उत्पादन क्षेत्र में अलग प्रकार के पौधें एवं रोग वाली पौधें दिखाई दे रहे हो, तो इसका मतलब आधार बीज के उत्पादन प्रक्रिया में कमी हैं तथा समय मानक के अनुरूप पालन नहीं किया गया, प्रामाणिक बीज उत्पादन खेत में अलग प्रकार के पौधों को निकालना पड़ता हैं, इस प्रक्रिया को रोगिंग कहते हैं। प्रामाणिक बीज में आफटाईप पौधें की अवांछनीय शिकायत प्राप्त होती हैं, तो इसका मतलब हैं, कि प्रामाणिक बीज उत्पादन खेत में किसानों द्वारा रोगिंग ठीक से नहीं किया गया, या हारवेस्टर से कटाई में अपमिश्रण तथा बीज अंकुरण में शिकायत प्राप्त होने पर उत्पादित प्रामाणिक बीज मे अधिक नमी पर अन्तर्ग्रहण किया गया हैं, जिसके कारण बीज खराब हो गया हैं, बीज के बोरो को अधिक ऊंचाई तक भंडारित करने के कारण, नमी युत्त मौसम में कीटनाशी दवा का अधिक मात्रा में छिडकाव किया गया, परिवहन में बीज भीग गया हो सकता हैं। बीज की गुणवत्ता बनाए रखने हेतु सभी स्तर पर सजग रहे।

विपणनः विपणन एक आर्थिक प्रक्रिया हैं, जो सभी प्रक्रियाओं का दर्पण हैं जिसमें बीज एवं सेवाओं का विनियम किया जाता हैं, औघोगिक प्रक्रिया में विपणन उघोंग का ह्रदय है जिसका कार्य उत्पादन से पहले शुरु होता हैं तथा वितरण के बाद की क्रियाएं सेवाएं शामिल होता हैं। बाजार की मांग एवं 2–3 वर्ष पूर्व की विपणन विश्लेषण के अनुसार, प्रजातिवार मात्रा का निर्धारित करते हैं जिससे मांग के अनुरूप उत्पादन प्रक्रिया आरंभ होती हैं । उत्पादन केंद्र से उठाकर, उपभोत्ता तक पहुँचने, विक्रया नीति निर्धारण, मूल्य निर्धारण, परिवाहन व्यवस्था, उत्पादन के विकास के साथ–साथ किसानों को संतुष्टि देते हुए लाभ प्राप्त किया जाता हैं। सरकार विभिन्न योजानों के माध्यम से अनुदान 10 वर्ष के कम प्रजातियों के वितरण पर दे रही हैं। धान, गेहूं में दस वर्ष से कम पर 10 रुपये प्रति किलोग्राम तथा दलहन 25 रुपये किलोग्राम, तिलहन में 25 रुपये किलोग्राम दस वर्ष से कम के प्रजातियों पर दिया जा रहा हैं तथा पहाड़ी क्षेत्रों के परिवाहन के लिए परिवाहन अनुदान भी सरकार दे रही है।

पशु प्रबंधन

वी. एस. सोलंकी
पशु चिकित्सा अधिकारी
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली–12

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि एवं पशुपालन का विशेष महत्व है। सकल घरेलू कृषि उत्पाद में पशुपालन का 28–30 प्रतिशत का योगदान सराहनीय है जिसमें दुग्ध एक ऐसा उत्पाद है जिसका योगदान सर्वाधिक है। भारत में विश्व की कुल संख्या का 15 प्रतिशत गायें एवं 55 प्रतिशत भैंसें है और देश के कुल दुग्ध उत्पादन का 53 प्रतिशत भैंसों व 43 प्रतिशत गायों से प्राप्त होता है। यह उपलब्धि पशुपालन से जुड़े विभिन्न पहलुओं जैसे मवेशियों की नस्ल, पालन–पोषण, स्वास्थ्य एवं आवास प्रबंधन इत्यादि में किए गये अनुसंधान एवं उसके प्रचार–प्रसार का परिणाम है। लेकिन आज भी कुछ अन्य देशों की तुलना में हमारे पशुओं का दुग्ध उत्पादन अत्यन्त कम है और इस दिशा में सुधार की बहुत संभावनायें हैं। छोटे, भूमिहीन तथा सीमान्त किसान जिनके पास फसल उगाने एवं बड़े पशु पालने के अवसर सीमित हैं, छोटे पशुओं जैसे भेड़–बकरियाँ, सूकर एवं मुर्गीपालन रोजी–रोटी का साधन व गरीबी से निपटने का आधार है। विश्व में हमारा स्थान बकरियों की संख्या में दूसरा, भेड़ों की संख्या में तीसरा एवं कुक्कुट संख्या में सातवाँ है। कम खर्चे में, कम स्थान एवं कम मेहनत से ज्यादा मुनाफा कमाने के लिए छोटे पशुओं का अहम योगदान है। अगर इनसे सम्बंधित उपलब्ध नवीनतम तकनीकियों का व्यापक प्रचार–प्रसार किया जाय तो निःसंदेह ये छोटे पशु गरीबों के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। कृषि क्षेत्र में जहाँ हम मात्र 1–2 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त कर रहे हैं वहीं पशुपालन से 4–5 प्रतिशत। इस तरह पशुपालन व्यवसाय में ग्रामीणों को रोजगार प्रदान करने तथा उनके सामाजिक एवं आर्थिक स्तर को ऊँचा उठाने की अपार सम्भावनायें हैं। अतःपशु प्रबंधन को मुख्यः चार भागों मे विभाजित किया गया हैं।

पशु प्रजनन

पशुओं में प्रजनन कार्यक्रम की सफलता के लिए पशु पालक को मादा पशु में पाए जाने वाले मद चक्र का जानना बहुत आवश्यक है। गाय या भैंस सामान्य तौर पर हर 18 से 21 दिन के बाद गर्मी में आती है पहली बार जब शरीर का वजन लगभग 250 किलो होने पर शुरू होता है। गाय व भैंसों में ब्याने के लगभग डेढ़ माह के बाद यह चक्र शुरू हो जाता है। मद चक्र शरीर में कुछ खास न्यासर्गों (हार्मोन्स) के स्राव में संचालित होता है। गाय व भैंसों में मदकल (गर्मी की अवधि) लगभग 20 से 36 घटे का होता है जिसे हम 3 भागों में बांट सकते हैंः– (1) मद की प्रारम्भिक अवस्था (2) मद की मध्यव्स्था (3) मद की अन्तिम अवस्था।

मद की विभिन्न अवस्थाओं का हम पशुओं में बाहर से कुछ विशेष लक्षणों को देख कर पता लगा सकते हैं।

मद की प्रारम्भिक अवस्था

(1) पशु की भूख में कमी आना। (2) दूध उत्पादन में कमी। (3) पशु का रम्भाना (बोलना) व बेचैन रहना। (4) योनि से पतले श्लैष्मिक पदार्थ का निकलना। (5) दूसरे पशुओं से अलग रहना। (6) पशु का पूंछ उठाना। (7) योनि द्वार (भग) का सूजना तथा बार–बार पेशाब करना। (8) शरीर के तापमान में मामूली सी वृद्धि होना।

मद की मध्यव्स्था

गर्मी की यह अवस्था बहुत महवपूर्ण होती है क्योंकि कृत्रिम गर्भधान के लिए यही अवस्था सबसे उपयुक्त मानी जाती है। इसकी अवधि लगभग 10 घटे तक रहती है। इस अवस्था में पशु काफी उत्तेजित दिखता है तथा वह अन्य पशुओं में रूचि दिखता है।

यह अवस्था निम्नलिखित लक्षणों से पहचानी जा सकती है।

(1) योनि द्वार (भग) से निकलने वाले श्लैष्मिक पदार्थ का गाढा होना जिससे वह बिना टूटे नीचे तक लटकता हुआ दिखाई देता है। (2) पशु जोर–जोर से रम्भाना (बोलने) लगता हैं। (3) भग (योनि द्वार) की सूजन तथा श्लैष्मिक झिल्ली की लाली में वृद्धि हो जाती है। (4) शरीर का तापमान बढ़ जाता हैं। (5) दूध में कमी तथा पीठ पर टेढ़ापन दिखाई देता है। (6) पशु अपने ऊपर दूसरे पशु को चढने देता हैं अथवा वह खुद दूसरे पशुओं पे चढने लगता।

मद की अन्तिम अवस्थाः

(1) पशु की भूख लगभग सामान्य हो जाती है। (2) दूध में कमी भी समाप्त हो जाती है। (3) पशु का रम्भाना कम हो जाता हैं। (4) भग की सूजन व श्लैष्मिक झिल्ली की लाली में कमी आ जाती है। (5) श्लेष्मा का निकलना या तो बन्द या फिर बहुत कम हो जाता है तथा यह बहुत गाढ़ा व कुछ अपारदर्शी होने लगता है।

गर्भधान करने का सही समयः

पशु में मदकाल प्रारम्भ होने के 12 से 18 घंटे बाद अर्थात मदकाल के द्वितीय अर्ध भाग में उसमें गर्भधान करना सबसे अच्छा रहता है। मोटे तौर पर जो पशु सुबह गर्मी में दिखाई पड़े उसमें दोपहर के बाद तथा जो शाम को मद में दिखाई पड़े उसमें अगले दिन सुबह गर्भधान करना चाहिए। टीका लगाने का उपयुक्त समय वह है जब पशु दूसरे पशु के अपने ऊपर चढने पर चुपचाप खड़ा रहे। इसे स्टेंडिंग हीट कहते हैं। बहुत से पशु मदकाल में रम्भाते नहीं हैं लेकिन गर्मी के अन्य लक्षणों के आधार पर उन्हें आसानी से पहचाना जा सकता हैं।

पशुओं के मद चक्र पर ऋतुओं का प्रभावः

वैसे तो साल भर पशु गर्मी में आते रहते हैं लेकिन पशुओं के मद चक्र पर ऋतुओं का प्रभाव भी देखने में आता हैं। जून माह में सबसे अधिक गायें गर्मी में आती है जबकि सबसे कम गायें अक्टूबर माह में मद में आती है। प्रजनन के दृष्टिकोण से त्रैमास सितम्बर–अक्टूबर–नवम्बर में सबसे कम गयें गर्मी में आती है। भैंसों में ऋतुओं का प्रभाव बहुत अधिक पाया जाता है। मार्च से अगस्त तक सबसे कम भैंसों गर्मी में आती है। जबकि सबसे अधिक सितम्बर से फरवरी की अवधि में भैंसें गर्मी में आती है। पशु प्रबन्धन में सुधर करके तथा पशुपालन में आधुनिक वैज्ञानिक त्रिकोण को अपना कर पशुओं के प्रजनन पर ऋतुओं के कुप्रभाव को काफी हद तक कम किया जा सकता हैं।

दुधारू नस्लों के चुनाव के लिये सामान्य प्रक्रिया

दुधारू गाय को चुनने के लिये निम्न बिंदुओं को ध्यान में रखना चाहिये–

- जब भी किसी पशु मेले से कोई मवेशी खरीदा जाता है तो उसे उसकी नस्ल की विशेषताओं और दुग्ध उत्पादन की क्षमता के आधार पर परखा जाना चाहिये।
- इतिहास और वंशावली देखी जानी चाहिये क्योंकि अच्छे कृषि फार्मों द्वारा ये हिसाब रखा जाता है।
- दुधारू गायों का अधिकतम उत्पादन प्रथम पांच बार प्रजनन के दौरान होता है। इसके चलते आपका चुनाव एक या दो बार प्रजनन के पश्चात् का होना चाहिये, वह भी प्रजनन के एक महीने बाद।
- उनका लगातार तीन समय दूध निकाला जाना चाहिये जिससे औसत के आधार पर उसकी दूध देने की क्षमता का आकलन किया जा सके।
- कोई भी जानवर अक्टूबर व नवंबर माह में खरीदा जाना सही होता है।
- अधिकतम उत्पादन प्रजनन के 90 दिनों तक नापा जाता है।

अधिक उत्पादन देने वाली गाय नस्ल की विशेषताएं

- आकर्षक व्यक्तित्व मादा जनित गुण, ऊर्जा, सभी अंगों में समानता व सामंजस्य, सही उठान।
- उसकी आंखें चमकदार व गर्दन पतली होनी चाहिये।
- थन पेट से सही तरीके से जुडे हुए होने चाहिये।
- थनों की त्वचा पर रक्त वाहिनियों की बुनावट सही होनी चाहिये।
- चारो थनों का अलग–अलग होना व सभी चूचक सही होनी चाहिये।

पशु पोषण

पोषण का उद्देश्य

- शरीर को सुचारू रूप से कार्य करने के लिए पोषण की आवश्यकता होती है जो उसे आहार से प्राप्त होता

है। पशु आहार में पाये जाने वाले विभिन्न पदार्थ शरीर की विभिन्न क्रियाओं में इस प्रकार उपयोग में आते हैं।

- पशु आहार शरीर के तापमान को बनाये रखने के लिए ऊर्जा प्रदान करता है।
- यह शरीर की विभिन्न उपापचयी क्रियाओं श्वासोच्छवास रक्त प्रवाह और समस्त शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं हेतु ऊर्जा प्रदान करता है।
- यह शारीरिक विकास गर्भावस्था में शिशु की वृद्धि तथा दूध उत्पादन आदि के लिए आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करता है।
- यह कोशिकाओं और उतकों की टूट–फूट, जो जीवन पर्यन्त होती रहती है की मरम्मत के लिए आवश्यक सामग्री प्रदान करता है।
- वसा भंडार के रूप में काम आती है एवम् भोजन की कमी के दौरान उपयोग में आती है। पशु के आहार में लगभग 3–5 प्रतिशत वसा की आवश्यकता होती है जो उसे आसानी से चारे और दाने से प्राप्त हो जाती है। अतः इसे अलग से देने की आवश्यकता नहीं होती। वसा के मुख्य स्रोत – बिनौला, तिलहन, सोयाबीन व विभिन्न प्रकार की खलें हैं।
- शरीर की सामान्य क्रियाशीलता के लिए पशु को विभिन्न विटामिनों की आवश्यकता होती है। ये विटामिन उसे आमतौर पर हरे चारे से पर्याप्त मात्राा में उपलब्ध हो जाते हैं। विटामिन 'बी तो पशु के पेट में उपस्थित सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा पर्याप्त मात्रा में संश्लेषित होता है। अन्य विटामिन जैसे ए सी डी ई तथा के पशुओं को चारे और दाने द्वारा मिल जाते हैं। विटामिन ए की कमी से भैंसो में गर्भपात अंधापन चमड़ी का सूखापन भूख की कमी गर्मी में न आना तथा गर्भ का न रूकना आदि समस्यायें हो जाती हैं।
- खनिज लवण– खनिज लवण मुख्यतः हड्डियों तथा दांतों की रचना के मुख्य भाग हैं तथा दूध में भी काफी मात्राा में स्रावित होते हैं। ये शरीर के एन्जाइम और विटामिनों के निर्माण में काम आकर शरीर की कई महत्वपूर्ण क्रियाओं को निष्पादित करते हैं। इनकी कमी से शरीर में कई प्रकार की बीमारियां हो जाती हैं। कैल्शियम, फॉस्फोरस, पोटैशियम, सोडियम, क्लोरीन, गंधक, मैग्निशियम, मैंगनीज, लोहा, तांबा, जस्ता, कोबाल्ट, आयोडीन, सेलेनियम इत्यादि शरीर के लिए आवश्यक प्रमुख लवण हैं। दूध उत्पादन की अवस्था में भैंस को कैल्शियम तथा फॉस्फोरस की अधिक आवश्यकता होती है। प्रसूति काल में इसकी कमी से दुग्ध ज्वर हो जाता है तथा बाद की अवस्थाओं में दूध उत्पादन घट जाता है एवम् प्रजनन दर में भी कमी आती है। कैल्शियम की कमी के कारण गाभिन भैंसें फूल दिखाती हैं। क्योंकि चारे में उपस्थित खनिज लवण भैंस की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाते, इसलिए खनिज लवणों को अलग से खिलाना आवश्यक है।

संतुलित आहार

संतुलित आहार उस भोजन सामग्री को कहते हैं जो किसी विशेष पशु की 24 घन्टे की निर्धारित पौषाणिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। संतुलित राशन में कार्बन, वसा और प्रोटीन के आपसी विशेष अनुपात के लिए कहा गया है। सन्तुलित राशन में मिश्रण के विभिन पदाथो ं की मात्रा मौसम और पशु भार तथा उसकी उत्पादन क्षमता के अनुसार रखी जाती है। एक राशन की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है 'एक पशु 24 घण्टे में जितना भोजन अन्तग्रहण करता है, वह राशन कहलाता है।' डेरी राशन या तो संतुलित होगा या असंतुलित होगा। असंतुलित राशन वह होता है जोकि पशु को 24 घण्टों में जितने पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है वह देने में असफल रहता है जबकि संतुलित राशन 'ठीक' भैंस को 'ठीक' समय पर 'ठीक' मात्रा में पोषक तत्व प्रदान करता है। संतुलित आहार में प्रोटीन, कार्बोहाईड्रेट, मिनरल्स तथा विटामिनों की मात्रा पशु की आवश्यकता अनुसार उचित मात्रा में रखी जाती है। . पशु को जो आहार खिलाया जाता है, उसमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि उसे जरूरत के अनुसार शुष्क पदार्थ, पाचक प्रोटीन तथा कुल पाचक तत्व उपलब्ध हो सकें। भैंस में शुष्क पदार्थ की खपत प्रतिदिन 2.5 से 3.0 किलोग्राम प्रति 100 किलोग्राम शरीर भार के अनुसार होती है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि 400 किलोग्राम वजन की भैंस को रोजाना 10–12 किलोग्राम शुष्क पदार्थ की आवश्यकता पड़ती है। इस शुष्क पदार्थ को हम चारे और

दाने में विभाजित करें तो शुष्क पदार्थ का लगभग एक तिहाई हिस्सा दाने के रूप में खिलाना चाहिए। उत्पादन व अन्य आवश्यकताओं के अनुसार जब हम पाचक प्रोटीन और कुल पाचक तत्वों की मात्रा निकालते हैं तो यह गणना काफी कठिन हो जाती है। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि जो चारा पशु को खिलाया जाता है उसमें पाचक प्रोटीन और कुल पाचक तत्वों की मात्रा ज्ञात करना किसान के लिए लगभग असंभव है। ऐसा इसलिए है कि पाचक प्रोटीन और कुल पाचक तत्वों की मात्रा प्रत्येक चारे के लिए अलग होती है। यह चारे की उम्र परिपक्वतालनुसार बदल जाती है। अनेक बार उपलब्धता के आधार पर कई प्रकार का चारा एक साथ मिलाकर खिलाना पड़ता है। किसान चारे को कभी भी तोलकर नहीं खिलाता है। इन परिस्थितियों में सबसे आसान तरीका यह है कि किसान द्वारा खिलाये जाने वाले चारे की गणना यह मान कर की जाये की पशु को चारा भरपेट मिलता रहे। अब पशु की जरूरत के अनुसार पाचक प्रोटीन और कुल पाचक तत्वों में कमी की मात्रा को दाना मिश्रण देकर पूरा कर दिया जाता है। इस प्रकार भैंस को खिलाया गया आहार संतुलित हो जाता है।

पशु स्वास्थय

बीमार पशुओं की पहचान :

- बीमार पशु उदास दिखाई देने लगता है।
- उसके कान सीधे तने हुए न हो कर लटक जाते हैं।
- अन्य पशुओं के झुंड से अलग–अलग या पीछे–पीछे चलता है।
- उसकी चंचलता में कमी आ जाती है।
- उसके बालों की चमक खो जाती है।
- आँखो की हलचल कम हो जाती है।
- उनकी चमक भी कम हो जाती है।
- वह जुगाली कम कर देता है या फिर बंद कर देता है।
- दुधारू पशु के दूध में अचानक कमी आ जाती है।
- जल्दी थक जाता है और बैठ जाता है।

पशुओं के प्रमुख रोग एव उपचार

दुधारू पशुओं में सूक्ष्म विषाणु जीवाणु फफूंदी अंतपरजीव प्रोटोजोआ कुपोषण तथा शरीर के अंदर की चयापचय (मेटाबोलिज्म) क्रिया मे विकार आदि प्रमुख कारणों से बहुत सी बीमारियां होती हैं इन बीमारियों में बहुत सी जानलेवा बीमारियां हैं या कई बीमारियां पशु के उत्पादन पर कुप्रभाव डालती हैं कुछ बीमारियां एक पशु से दूसरे पशु को लग जाती हैं जैसे मुँह व खुर की बीमारी, गला घोंटू आदि कुछ बीमारियां पशुओं से मनुष्यों में भी आ जाती है जैसे रेबीज (हल्क जाना) क्षय रोग आदि इन्हें जुनोटिक रोग कहते हैं अतः पशु पालक को प्रमुख बीमारियों के बारे में जानकारी रखना आवश्यक है ताकि वह उचित समय पर उचित कदम उठा कर आर्थिक हानि से बचाव तथा मानव स्वास्थ्य की रक्षा में भी सहयोग कर सके। दुधारू पशुओं के प्रमुख रोग् निम्नलिखित हैं:

(क) विषाणु जनित रोग

मुंहपका–खुरपका रोग

सूक्ष्म विषाणु (वायरस) से बहुत तेजी फैलाने वाला छुतदार रोग है जोकि गाय, भैंस, भेड़, बकरी , ऊंट, सुअर आदि पशुओं में होता है। विदेशी व संकर नस्ल की गायों में यह बीमारी अधिक गम्भीर रूप से पायी जाती है। यह बीमारी हमारे देश में हर स्थान में होती है। इस रोग से ग्रस्त पशु ठीक होकर अत्यन्त कमजोर हो जाते हैं। दुधारू पशुओं में दूध का उत्पादन बहुत कम हो जाता है तथा बैल काफी समय तक काम करने योग्य नहीं रहते।

रोग का कारणः–

मुंहपका–खुरपका रोग एक अत्यन्त सुक्ष्ण विषाणु जिसके अनेक प्रकार तथा उप–प्रकार हैं, से होता है। इनकी प्रमुख किस्मों में ओ,ए,सी, एशिया–1, एशिया–2, एशिया–3, सैट–1, सैट–3 तथा इनकी 14 उप–किस्में शामिल हैं। हमारे देश मे यह रोग मुख्यतः ओ,ए,सी तथा एशिया–1 प्रकार के विषाणुओं द्वारा होता है। नम–वातावरण, पशु की आन्तरिक कमजोरी, पशुओं तथा लोगों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर आवागमन तथा नजदीकी क्षेत्र में रोग का प्रकोप इस बीमारी को फैलाने में सहायक कारक हैं।

संक्रमण विधिः– यह रोग बीमार पशु के सीधे सम्पर्क में आने, पानी, घास, दाना, बर्तन, दूध निकालने वाले व्यक्ति

के हाथों से, हवा से तथा लोगों के आवागमन से फैलता है। रोग के विषाणु बीमार पशु की लार, मुंह, खुर व थनों में पड़े फफोलों में बहुत अधिक संख्या में पाए जाते हैं। ये खुले में घास, चारा, तथा फर्श पर चार महीनों तक जीवित रह सकते हैं लेकिन गर्मी के मौसम में यह बहुत जल्दी नष्ट हो जाते हैं। विषाणु जीभ, मुंह, आंत, खुरों के बीच की जगह तथा थनों में घाव आदि के द्वारा स्वस्थ पशु के रक्त में पहुंचते हैं तथा लगभग 5 दिनों के अंदर उसमें बीमारी के लक्षण पैदा करते हैं। रोग के लक्षण :– रोग ग्रस्त पशु को 104–106 डि. फारेनहायट तक बुखार हो जाता है। वह खाना–पीना व जुगाली करना बन्द कर देता है। दूध का उत्पादन गिर जाता है। मुंह से लार बहने लगती है तथा मुंह हिलाने पर चप–चप की आवाज आती हैं इसी कारण इसे चपका रोग भी कहते हैं तेज बुखार के बाद पशु के मुंह के अंदर, गालों, जीभ, होंठ तालू व मसूड़ों के अंदर, खुरों के बीच तथा कभी–कभी थनों व आयन पर छाले पड़ जाते हैं। ये छाले फटने के बाद घाव का रूप ले लेते हैं जिससे पशु को बहुत दर्द होने लगता है। मुंह में घाव व दर्द के कारण पशु खाना–पीना बन्द कर देते हैं जिससे वह बहुत कमजोर हो जाता है। खुरों में दर्द के कारण पशु लंगड़ा चलने लगता है। गर्भवती मादा में कई बार गर्भपात भी हो जाता है। नवजात बच्छे/बच्छियां बिना किसी लक्षण दिखाए मर जाते है। लापरवाही होने पर पशु के खुरों में कीड़े पड़ जाते हैं तथा कई बार खुरों के कवच भी निकल जाते हैं। हालांकि व्यस्क पशु में मृत्यु दर कम है लेकिन इस रोग से पशु पालक को आर्थिक हानि बहुत ज्यादा उठानी पड़ती है। दूध देने वाले पशुओं में दूध के उत्पादन में कमी आ जाती है। ठीक हुए पशुओं का शरीर खुरदरा तथा उनमें कभी कभी हांफना रोग होजाता है। बैलों में भारी काम करने की क्षमता खत्म हो जाती हैं।

उपचारः– इस रोग का कोई निश्चित उपचार नहीं है लेकिन बीमारी की गम्भीरता को कम करने के लिए लक्षणों के आधार पर पशु का उपचार किया जाता है। रोगी पशु में सेकैन्डरी संक्रमण को रोकने के लिए उसे पशु चिकित्सक की सलाह पर एंटीबायोटिक के टीके लगाए जाते हैं। मुंह व खुरों के घावों को फिटकरी या पोटाश के पानी से धोते हैं। मुंह में बोरो–गिलिसरीन तथा खुरों में किसी एंटीसेप्टिक लोशन या क्रीम का प्रयोग किया जा सकता है।

रोग से बचाव

(1) इस बीमारी से बचाव के लिए पशुओं को पोलीवेलेंट वेक्सीन के वर्ष में दो बार टीके अवश्य लगवाने चाहिए। बच्छे/बच्छियां में पहला टीका 1माह की आयु में, दूसरा तीसरे माह की आयु तथा तीसरा 6 माह की उम्र में और उसके बाद नियमित टीके लगाए जाने चाहिए।

(2) बीमारी हो जाने पर रोग ग्रस्त पशु को स्वस्थ पशुओं से अलग कर देना चाहिए।

(3) बीमार पशुओं की देख–भाल करने वाले व्यक्ति को भी स्वस्थ पशुओं के बाड़े से दूर रहना चाहिए।

(4) बीमार पशुओं के आवागमन पर रोक लगा देना चाहिए।

(5) रोग से प्रभावित क्षेत्र से पशु नहीं खरीदना चाहिए।

(6) पशुशाला को साफ–सुथरा रखना चाहिए।

(7) इस बीमारी से मरे पशु के शव को खुला न छोड़कर गाड़ देना चाहिए।

3. पशुओं में पागलपन (रेबीज):

इस रोग को पैदा करने वाले सूक्ष्म विषाणु पागल कुत्ते, बिल्ली,बंदर, गीदड़, लोमड़ी या नेवले के काटने से स्वस्थ पशु के शरीर में प्रवेश करते हैं तथा नाड़ियों के द्वारा मस्तिष्क में पहुंच कर उसमें बीमारी के लक्षण पैदा करते हैं। रोग ग्रस्त पशु की लार में यह विषाणु बहुतायत में होता है तथा रोगी पशु द्वारा दूसरे पशु को काट लेने से अथवा शरीर में पहले से मौजूद किसी घाव के ऊपर रोगी की लार लग जाने से यह बीमारी फैल सकती है। यह बीमारी रोग ग्रस्त पशुओं से मनुष्यों में भी आ सकती है अतः इस बीमारी का जन स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत महत्व है। एक बार पशु अथवा मनुष्य में इस बीमारी के लक्षण पैदा होने के बाद उसका फिर कोई इलाज नहीं है तथा उसकी मृत्यु निश्चित है। विषाणु के शरीर में घाव आदि के माध्यम से प्रवेश करने के बाद 10 दिन से 12 वर्ष तक की अवधि में यह बीमारी हो सकती है। मस्तिष्क के जितना अधिक नजदीक घाव होता है उतनी ही जल्दी बीमारी के लक्षण पशु में पैदा हो जाते है।

लक्षण

रेबीज मुख्यतः दो रूपों में देखी जाती है, पहला जिसमें रोग ग्रस्त पशु काफी भयानक हो जाता है तथा दूसरा जिसमें वह बिल्कुल शांत रहता है।पहले रूप में पशु में रोग के सभी लक्षण स्पष्ट दिखायी देते हैं लेकिन शांत रूप में रोग के लक्षण बहुत कम नहीं के बराबर ही होते हैं। कुत्तों में इस रोग की प्रारम्भिक अवस्था में व्यवहार में परिवर्तन हो जाता है तथा उनकी आंखे अधिक तेज नजर आती हैं। कभी–कभी शरीर का तापमान भी बढ़ जाता है। 2–3 दिन के बाद उसकी बेचौनी बढ़ जाती है तथा उसमें बहुत ज्यादा चिड़–चिड़ापन आ जाता है। वह काल्पनिक वस्तुओं की और अथवा बिना प्रयोजन के इधर–उधर काफी तेजी से दौड़ने लगता है तथा रास्ते में जो भी मिलता है उसे वह काट लेता हैं। अन्तिम अवस्था में पशु के गले में लकवा हो जाने के कारण उसकी आवाज बदल जाती है, शरीर में कपकपी तथा चाल में लड़खड़ाहट आ जाती है तथा वह लकवा ग्रस्त होकर अचेतन अवस्था में पड़ा रहता है। इसी अवस्था में उसकी मृत्यु हो जाती है। गाय व भैंसों में इस बीमारी के भयानक रूप के लक्षण दिखते हैं। पशु काफी उत्तेजित अवस्था में दिखता है तथा वह बहुत तेजी से भागने की कोशिश करता हैं। वह जोर–जोर से रम्भाने लगता है तथा बीच–बीच में जम्भाइयाँ लेता हुआ दिखाई देता है। वह अपने सिर को किसी पेड़ अथवा दीवार के साथ टकराता है। रोग ग्रस्त पशु दुर्बल हो जाता है और उसकी मृत्यु हो जाती है। मनुष्य में इस बीमारी के प्रमुख लक्षणों में उत्तेजित होना, पानी अथवा कोई खाद्य पदार्थ को निगलने में काफी तकलीफ महसूस करना तथा अंत में लकवा होना आदि है।

उपचार तथा रोकथाम

एक बार लक्षण पैदा हो जाने के बाद इस बीमारी का कोई इलाज नहीं है। जैसे ही किसी स्वस्थ पशु को इस बीमारी से ग्रस्त पशु काट लेता है उसे तुरन्त नजदीकी पशु चिकित्सालय में ले जाकर इस बीमारी से बचाव का टीका लगवाना चाहिए। इस कार्य में ढील बिल्कुल नहीं बरतनी चाहिए क्योंकि ये टीके तब तक ही प्रभावकारी हो सकते हैं जब तक कि पशु में रोग के लक्षण पैदा नहीं हो तो पालतू कुत्तों को इस बीमारी से बचने के लिए नियमित रूप से टीके लगवाने चाहिए तथा आवारा कुत्तों को दूर रखना चाहिए। पालतू कुत्तों का पंजीकरण स्थानीय संस्थाओं द्वारा करवाना चाहिए तथा उनके नियमित टीकाकरण का दायित्व निष्ठापूर्वक मालिक को निभाना चाहिए।

(ख)जीवाणु जनित रोग

1. गलघोंटू रोग (एच.एस.)

गाय व भैंसों में होने वाला एक बहुत ही घातक तथा छूतदार रोग है जो की अधिकतर बरसात के मौसम में होता है यह गोपशुओं की अपेक्षा भैंसों में अधिक पाया जाता है। यह रोग बहुत तेजी से फैलकर बड़ी संख्या मे पशुओं को अपनी चपेट में लेकर उनकी मौत का कारण बन जाता हैं जिससे पशु पालकों को भारी नुकसान उठाना पड़ता है। इस रोग के प्रमुख लक्षणों में तेज बुखार, गले में सूजन, सांस लेने में तकलीफ जीभ निकालकर सांस लेना तथा सांस लेते समय तेज आवाज होना आदि शामिल है। कईं बार बिना किसी स्पष्ट लक्षणों के ही पशु की अचानक मृत्यु हो जाती है।

उपचार तथा रोकथामः– इस रोग से ग्रस्त हुए पशु को तुरन्त पशु चिकित्सक को दिखाना चाहिए अन्यथा पशु की मौत हो जाती है। सही समय पर उपचार किए जाने पर रोग ग्रस्त पशु को बचाया जा सकता है। इस रोग की रोकथाम के लिए रोगनिरोधक टीके लगाए जाते हैं। पहला टीका 3 माह की आयु में दूसरा 9 माह की अवस्था में तथा इसके बाद हर साल यह टीका लगाया जाता हैं।

2. लंगड़ा बुखार (ब्लैक क्कार्टर)

जीवाणुओं से फैलने वाला यह रोग गाय व भैंसों दोनों को होता है लेकिन गोपशुओं में यह बीमारी अधिक देखी जाती है तथा इससे अच्छे व स्वस्थ पशु ही ज्यादातर प्रभावित होते हैं। इस रोग में पिछली अथवा अगली टांगों के ऊपरी भाग में भारी सूजन आ जाती हैं जिससे पशु लंगड़ा कर चलने लगता है या फिर बैठ जाता है। पशु को तेज बुखार हो जाता है तथा सूजन वाले स्थान को दबाने पर कड़–कड़ की आवाज आती है।

उपचार तथा रोकथामः रोग ग्रस्त पशु के उचार हेतु

तुरन्त नजदीकी पशु चिकित्सालय में संपर्क करना चाहिए ताकि पशु को शीघ्र उचित उपचार मिल सके। देर करने से पशु को बचना लगभग असंभव हो जाता है क्योंकि जीवाणुओं द्वारा पैदा हुआ जहर (टोक्सीन) जो कि पशु की मृत्यु का कारण बन जाता है। उपचार के लिए पशु को ऊँची डोज में प्रोकेंन पेनिसिलीन के टीके लगाए जाते हैं तथा सूजन वाले स्थान पर भी इसी दवा को सुई द्वारा माँस में डाला जाता है।

3. ब्रुसिल्लोसिस

जीवाणु जनित इस रोग में गोपशुओं तथा भैंसों में गर्भवस्था के अन्तिम त्रैमास में गर्भपात हो जाता है। यह रोग पशुओं से मनुष्यों में भी आ सकता है। मनुष्यों में यह उतार–चढ़ाव वाला बुखार (अज्युलेण्ट फीवर)नामक बीमारी पैदा करता है। पशुओं में गर्भपात से पहले योनि से अपारदर्शी पदार्थ निकलता है तथा गर्भपात के बाद पशु की जेर रुक जाती है। इसके अतिरिक्त यह जोड़ों में आर्थ्रायटिस (जोड़ों की सूजन) पैदा करता है।

उपचार व रोकथामः– अब तक इस रोग का कोई प्रभाव करी इलाज नहीं हैं। यदि क्षेत्र में इस रोग के 5% से अधिक पोजिटिव केस हों तो रोग की रोकथाम के लिए बच्छियों में 3–6 माह की आयु में ब्रुसेल्ला–अबोर्टस स्ट्रेन–19 के टीके लगाए जा सकते हैं। पशुओं में प्रजनन की कृत्रिम गर्भाधान पद्वति अपना कर भी इस रोग से बचा जा सकता है।

(ग) रक्त प्रोटोजोआ जनित रोग

1. बबेसिओसिस अथवा टिक फीवर (पशुओं के पेशाब में खून आना): यह बीमारी पशुओं में एक कोशिकीय जीव जिसे प्रोटोजोआ कहते हैं से होती है। बबेसिया प्रजाति के प्रोटोजोआ पशुओं के रक्त में चिंचडियों के माध्यम से प्रवेश हो जाते हैं तथा वे रक्त की लाल रक्त कोशिकाओं में जाकर अपनी संख्या बढ़ाने लगते हैं जिसके फलस्वरूप लाल रक्त कोशिकायें नष्ट होने लगती हैं। लाल रक्त किशिकाओं में मौजूद हीमोग्लोबिन पेशाब के द्वारा शरीर से बाहर निकलने लगता है जिससे पेशाब का रंग कॉफी के रंग का हो जाता है। कभी–कभी उसे खून वाले दस्त भी लग जाते हैं। इसमें पशु खून की कमी हो जाने से बहुत कमजोर हो जाता है पशु में पीलिया के लक्षण भी दिखायी देने लगते हैं तथा समय पर इलाज ना कराया जाय तो पशु की मृत्यु हो जाती है।

उपचार व रोकथामः– यदि समय पर पशु का इलाज कराया जाये तो पशु को इस बीमारी से बचाया जा सकता हैं। पशु चिकित्सक की सलाह के अनुसार बिरेनिल के टीके पशु के भार के अनुसार मांस में दिए जाते हैं तथा खून बढाने वाली दवाओं का प्रयोग किया जाता हैं। इस बीमारी से पशुओं को बचाने के लिए उन्हें चिंचडियों के प्रकोप से बचना जरूरी है क्योंकि ये रोग चिंचडियों के द्वारा ही पशुओं में फैलता है।

(घ) बाह्य तथा अंतः परजीवी जनित रोग

1. बाह्य परजीवी : पशुओं के शरीर बाह्य परजीवी जैसे कि जुएं, पिस्सु या चिंचडी आदि प्रकोप पर पशुओं का खून चूसते हैं जिससे उनमें खून की कमी हो जाती है तथा वे कमजोर हो जाते हैं। इन पशुओं की दुग्ध उत्पादन क्षमता घट जाती है तथा वे अन्य बहुत सी बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। बहुत से परजीवी जैसे कि चिचडियों आदि पशुओं में कुछ अन्य बीमारी जैसे टीक–फीवर का संक्रमण भी कर देते हैं। पशुओं में बाह्म परजीवी के प्रकोप को रोकने के लिए अनेक दवाइयां उपलब्ध हैं जिन्हें पशु चिकित्सक की सलाह के अनुसार प्रयोग करके इनसे बचा जा सकता है।

2. अंतः परजीवीः पशुओं की पाचन नली में भी अनेक प्रकार के परजीवी पाए जाते हैं जिन्हें अंतः परजीवी कहते हैं। ये पशु के पेट, आंतों, यकृत उसके खून व खुराक पर निर्वाह करते हैं जिससे पशु कमजोर हो जाता है तथा वह अन्य बहुत सी बीमारियों का शिकार हो जाता है। इससे पशु की उत्पादन क्षमता में भी कमी आ जाती है। पशुओं को उचित आहार देने के बावजूद यदि वे कमजोर दिखायी दें तो इसके गोबर के नमूनों का पशु चिकित्सालय में परीक्षण करना चाहिए। परजीवी के अंडे गोबर के नमूनों में देखकर पशु को उचित दवा दी जाती है जिससे परजीवी नष्ट हो जाते हैं।

पशु आवास

पशुओं के लिए उचित आवास होना अति आवश्यक है।

आवास साफ–सुथरी व हवादार होना चाहिए, जिसका फर्श पक्का व फिसलन रहित हो तथा मूत्र व पानी की निकासी हेतु ढलान हो।

- पशुगृह की छत उष्मा की कुचालक हो ताकि गर्मियों में अत्यधिक गरम न हो। इसके लिये एस्बेस्टस शीट उपयोग में लाई जा सकती हैं अधिक गर्मी के दिनों में छत पर 4–6 इंच मोटी घांसफूस की परत या छप्पर डाल देना चाहिये। ये परत उष्मा अवशोषक का कार्य करती है जिसके कारण पशुशाला के अंदर का तापमान उचित बना रहता है।
- पशुशाला की छत की ऊंचाई कम से कम 10 फुट ऊंची होनी चाहिए ताकि हवा का समुचित संचार पशुगृह में हो सके तथा छत की तपन से भी पशु बच सके।
- पशुशाला में खिड़कियां व दरवाजों व अन्य खुली जगहों पर जहां से तेज गरम हवा आती हो बोरी या टाट आदि टांग कर पानी का छिड़काव कर देना चाहिए।
- पशुशाला में पशुओं की संख्या अत्यधिक नहीं होनी चाहिए। प्रत्येक पशु को उसकी आवश्यकतानुसार पर्याप्त स्थान उपलब्ध कराएं। मुखता हर व्यवस्था में गाय व भैसों को क्रमशः 3.5 व 4.0 वर्ग मीटर स्थान ढका हुआ तथा 7 से 8 वर्ग मीटर खुले स्थान बाड़े के रूप में प्रति पशु उपलब्ध होना चाहिए।
- पशुओं को नहलाने का उचित प्रबंध होना चाहिए– यदि संभव हो तो तालाब में भैंसों को नहलाएं
- गर्मियों में पशुओं को पीने के लिए ठंडा व ताजा जल उपलब्ध करायें। इसके लिये पानी की टैंक पर छाया की व्यवस्था करना अति आवश्यक होता है।
- पशुशाला के आसपास छायादार वृक्षों का होना अति आवश्यक है यह वृक्ष पशुओं को छाया तो प्रदान करते हैं साथ ही पशुओं को गरम लू से भी बचाते हैं।
- पशुशाला में पशुओं को गर्मी से बचाने हेतु पंखे लगवायें तथा दरवाजों पर खिड़कियों पर खस व टाट लगाकर उन पर पानी का छिड़काव करें। इससे पशुशाला का तापमान सामान्य बना रहता है।

उपरोक्त बातों को ध्यान रखकर पशुपालक अगर अपने दुधारू पशुओं का प्रबंध करेंगे तो गर्मियों में भी अपने पशुओं के उत्पादन व प्रजनन क्षमता को बनाए रखकर डेयरी व्यवसाय के द्वारा अच्छी आय प्राप्त कर सकते हैं।

गर्मियों में दुधारू पशुओं पर पडने वाले मुख्य दुष्प्रभाव

- पशुओं की श्वसन क्रिया में वृद्धि होना– गर्मियों में शरीर की उष्मा को निकालने के लिये पशु अपने शरीर से पानी को पसीने के रूप से वाष्पीकरण करता है। पानी को शरीर से वाष्पित करने के लिये पशु के शरीर से उष्मा लेनी पड़ती है तथा पशु पसीने को शरीर से वाष्पित होने पर राहत महसूस करता है। गर्मियों में पशु अपनी श्वसन क्रिया को बढ़ाकर पानी की वाष्पीकरण क्रिया को बढ़ा देते हैं इन सबके कारण पशुओं में पानी की आवश्यकता बढ़ जाती है।
- पशु सूखा चारा खाना कम कर देते हैं– गर्मियों में जल वायुमंडलीय तापमान पशुओं के शारीरिक तापमान से अधिक हो जाता है तो पशु सूखा चारा खाना कम कर देते है क्योंकि सूखा चारा को पचाने में शरीर में उष्मा का अधिक मात्रा में निकलता है ये क्रम चारा खाना उनकी दुग्ध क्षमता को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है।
- दुधारू पशुओं के दुग्ध उत्पादन में कमी होना– गर्मियों के मौसम में दुधारू पशुओं हेतु चारे की उपलब्धता व गुणवत्ता में कमी हो जाती है जिसका दुष्प्रभाव दुधारू पशुओं के दुग्ध उत्पादन की क्षमता में कमी हो जाना है।
- प्रजनन क्रिया क्षीण मंद हो जाना– इस मौसम में भैसों व संकर नस्ल गायों की प्रजनन क्षमता मंद हो जाती है तथा मदचक्र लम्बा हो जाता है एवं मद अवस्था का काल व उग्रता दोनों बढ़ जाती हैं। जिसके कारण पशुओं में गर्भधारण की संभावना काफी घट जाती है जो कि दुग्ध उत्पादन पर सीधा प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।
- पशुओं को लू लगने का डर बना रहता है – अत्यधिक गर्मी में पशुओं को लू लगने के कारण पशु बीमार पड़ जाते हैं जिससे उनके दुग्ध उत्पादन में तो काफी कमी आती है साथ ही बीमार पशु की उचित देखभाल न होने के कारण उसकी मृत्यु तक हो जाती है ।

औषधीय फसल पचौली की उन्नतशील खेती

[1]अमित कुमार तिवारी, [2]प्रियंका सुर्यवंशी एवं [3]वाई. वी. सिंह
[1]सी.एस.आई.आर.–केन्द्रीय औषधीय एवं सगंध पौधा संस्थान
अनुसंधान केन्द्र, पन्तनगर
[2]सी.एस.आई.आर.–केन्द्रीय औषधीय एवं सगंध पौधा संस्थान, लखनऊ
[3]भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

पचौली *लैमिएसी* कुल का पौधा है, जिसका वानस्पतिक नाम *पोगस्टिमॉन पचौली* है। चतुर्धतुक तनों के साथ एक शाखित, सीधा तथा बारहमासी सुगंधित जड़ी बूटी है। इसकी पत्तियों मे आवश्यक तेल होता है। भारत में इसकी जंगली प्रजातियां भी पायी जाती है लेकिन पचौली का सुगंधित तेल पोगस्टिमॉन पचौली से ही प्राप्त होता है। पचौली के तेल में मुख्यतः लगभग 40 से 45 प्रतिशत व केबलिन एल्कोहॉल पाया जाता है। पचौली तेल का उपयोग अन्य तेलों को स्थायित्व प्रदान करने हेतु किया जाता है इसलिए इसका उपयोग सगंध चिकित्सा एवं सुगंधित व सौन्दर्य प्रसाधनों की सामग्री में किया जाता है।

उन्नतशील प्रजातियाँः सीएसआईआर–केन्द्रीय औषधीय एवं सगंध पौधा संस्थान, लखनऊ द्वारा विकसित प्रजातियाँ निम्न हैंः–

1. **सिम उत्कृष्टः** यह पचौली की नयी विकसित प्रजाति है। इस प्रजाति की उत्पादन क्षमता व बढ़वार सिम–समर्थ की अपेक्षा अधिक है। इसकी खेती छाया दार खेतों तथा खुले खेतों में आसानी से की जा सकती है।
2. **सिम–समर्थः** पचौली की इस प्रजाति की बढ़वार शीघ्र होती है तथा इसकी खेती छाया दार व खुले खेतों में आसानी से की जा सकती है। यह प्रजाति रोग रोधी होती है।
3. **सिम–श्रेष्ठाः** इस प्रजाति की खेती सामान्यतः दक्षिण भारत में की जाती है। दक्षिण भारत के क्षेत्र में इसकी बढ़वार अच्छी होती है।

मृदाः पचौली की अच्छी वृद्धि व बढ़वार के लिए मध्यम दोमट भूमि जिसमें जल निकास की उचित व्यवस्था हो वह मृदा पचौली की खेती के लिए उपयुक्त मानी जाती है। पचौली का पौधा छाया को पसन्द करता है, इसलिए इसकी खेती छायादार पेड़ों जैसे– यूकेलिप्टस, आम के बाग, अर्जुन तथा पापुलर आदि पेड़ों के बीच इसकी खेती सफलता पूर्वक की जा सकती है।

जलवायुः पचौली की खेती के लिए तापमान 22 से 28 डिग्री सेन्टीग्रेड, व आद्रता 70 से 75 प्रतिशत हो उन क्षेत्रों में इसकी खेती सफलता पूर्वक की जा सकती है।

प्रवर्धनः पचौली का प्रवर्धन तनों की कलमों से किया जाता है, कलमों को अप्रैल से मई के महीनों में नर्सरी में लगाया जाता है। कलमों को क्यारियों में अथवा पॉली बैग में लगाते हैं, पॉली बैग को गोबर की खाद से भरते हैं या फिर 50:50 में गोबर की खाद व मृदा का माध्यम बनाकर और कलमों को किसी फफून्दीनाशक रसायन से 30 मिनट उपचारित करने के बाद लगाते हैं। प्रायः कलमों में 15–20 दिन में जड़ें निकलना प्रारम्भ हो जाती हैं जो कि 30–35 दिन बाद पूर्णरूप से निकल आती हैं और जड़दार पौधे 30–35 दिन बाद मुख्य खेत में लगाने योग्य तैयार हो जाते हैं कलमों की लम्बाई 12–15 सेमी व प्रत्येक कलम में 3–4 गांठें हों नर्सरी में लगाने के लिए उपयुक्त मानी जाती है।

पौध रोपणः

खेत का चुनावः पचौली के जड़वाले पौधों को मुख्य खेत में रोपाई करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना अति आवश्यक हैः–

- पचौली का पौधा छाया में भी अच्छी बढ़वार करता है इसलिए पचौली को पेड़ों के बीच छायादार खेत में

लगाने से भी तेल का उत्पादन लिया जा सकता है।

- पचौली की सफल व लाभदायक खेती करने के लिए उस खेत का चुनाव करें जिसमें जल निकास की उचित व्यवस्था हो, वर्षा का जल भराव न हो उसे आसानी से निकाला जा सके क्योंकि जलभराव की स्थिति में फसल में गलन रोग की शुरूवात हो जाती है और फसल सूख जाती है।
- बलुई दोमट मृदा पचौली की खेती के लिए मानी जाती है।
- जिस मृदा में पर्याप्त मात्रा में जीवांश पदार्थ और उर्वरता हो वह मृदा पचौली की खेती के लिए अच्छी रहती है।
- खेत का चुनाव करते समय सिंचाई के संसाधनों को भी ध्यान में रखना चाहिए जिससे की आवश्यकता पड़ने पर फसल की सिंचाई की जा सके।

भू–परिष्करणः खेत की पहली जुताई गहरी करनी चाहिए तथा बाद की दो हल्की जुताई करके खेत को भुरभुरा एवं समतल कर लेना चाहिए जिससे की खेत में पानी अधिक समय तक न ठहरे और आवश्यकता पड़ने पर आसानी से सिंचाई एवं जल निकास किया जा सके।

रोपाईः अच्छी तरह तैयार खेत में पंक्ति से पंक्ति तथा पौधे से पौधे की दूरी 50 सेमी निर्धारित कर 30– 35 दिन पुराने पौधे की रोपाई करनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरकः पचौली की उन्नत खेती के लिए 12–15 टन गोबर की खाद या 4–5 टन वर्मीकम्पोस्ट प्रति हैक्टेयर की दर से 15 दिन पूर्व खेत में मिला देना चाहिए तथा उर्वरक की मात्रा, नत्रजन 150 किग्रा फॉस्फोरस 50 किग्रा व पोटाश 50 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से देना चाहिए, नत्रजन की चौथाई फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा अन्तिम जुताई से पहले खेत में मिला देना चाहिए। नत्रजन की शेष बची हुई मात्रा को 3–4 बराबर भाग में प्रत्येक कटाई के उपरान्त उचित नमी की अवस्था पर देना चाहिए।

सिंचाईः पचौली की फसल में पहली सिंचाई रोपाई के तुरन्त बाद की जाती हैं। अन्य सिंचाई मौसम, जलवायु तथा मृदा पर निर्भर करती है। यदि जलवायु अच्छी एवं समय पर वर्षा हो जाती है तो अधिक सिंचाई की आवश्यकता नही पड़ती है परन्तु मैदानी क्षेत्रों में जहां वर्षा कम होती है या वर्षा ऋतु में वर्षा होती है उन क्षेत्रों में प्रति वर्ष 8–10 सिंचाई की आवश्यकता पडती है।

खरपतवार नियंत्रणः पचौली में शुरूआती दौर में रोपाई से 40 दिन तक खरपतवार की रोकथाम करनी आवश्यक है। इसके लिए रोपाई के 72 धंटे के भीतर पेन्डीमेथालिन नामक खरपतवार नाशी का प्रयोग 1 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से करनी चाहिए तथा बीच–बीच में एक या दो निराई खुरपी द्वारा की जानी चाहिए, जिससे की खरपतवार के साथ–साथ मृदा परिष्करण भी हो जाता है और परिणाम स्वरूप वायु संचार की मृदा में बढ़ोत्तरी हो जाती है जिससे पौधे की बढ़वार अच्छी होती है।

प्रमुख कीट एवं रोगः

कीटः पचौली की फसल में मुख्यरूप से कैटरपीलर, सफेद मक्खी आदि कीट लगते हैं, इनकी रोकथाम के लिए डाइक्लोरोवास, मोनोक्रोटोफॉस आदि रसायनों का प्रयोग किया जाता है। पचौली की फसल में दूसरे या तीसरे वर्ष निमेटोड (*मीलैडीगीनी इनकोगनीरा*) का प्रकोप होता है। यह संक्रमण जलवायु तथा मृदा पर निर्भर करता है, इसकी रोकथाम के लिए कार्बोफ्युरॉन का 15–20 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग किया जाता है।

रोगः पचौली की फसल मे भूरा धब्बा रोग पत्ती पर लगता है इस रोग के प्रभाव के कारण पत्तियों पर भूरे रंग के धब्बे दिखई देने लगते हैं जो बाद में बढ़कर पौधों की पूरी पत्तियों पर दिखाई देने लगते हैं। यह रोग फफून्द द्वारा फैलता है किसी भी फफून्दीनाशक रसायन का प्रयोग करके रोका जा सकता है।

सूखा रोग (विल्ट): इस रोग के प्रभाव से पचौली के पौधे सूखने लगते है, यह रोग भी कवक के द्वारा फैलता है इसलिए इसकी रोकथाम के लिए किसी भी कवकनाशी रसायन का प्रयोग किया जा सकता है।

कटाईः पचौली की फसल की पहली कटाई पौध रोपण के चार से पाँच माह बाद की जाती है तथा बाद की सभी

कटाईयाँ तीन माह के अन्तराल पर करनी चाहिये। यदि पौधों की निचली पत्तियाँ हल्की पीली या भूरी हो रही हों तो उस समय फसल कटाई के लिए तैयार मानी जाती है। कटाई हमेशा 20–25 सेमी ऊपर से की जाती है प्रत्येक कटाई के पश्चात फफून्दीनाशक 0.2 प्रतिशत की दर से छिड़काव किया जाता है, इसी के साथ नत्रजन उर्वरक देना अति आवश्यक है जिससे फसल की आवश्यक वृद्धि हो सके।

उपजः पचौली की खेती से प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष 150–200 कुन्तल हरा शाकीय भाग प्राप्त होता है, जिसे सूखाने पर लगभग 25–30 कुन्तल प्रति हेक्टेयर सूखा शाक प्राप्त होता है। जिसमें 2–2.5 प्रतिशत तेल की मात्रा होती है, इस प्रकार तेल का उत्पादन लगभग 60–70 किग्रा प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष प्राप्त होता है।

आसवनः पचौली का उच्च गुणवक्ता युक्त तेल प्राप्त करने के लिए पत्तियों और तनों को भली भांति छाया में सुखाया जाता है, क्योंकि धूप में सुखाने से तेल वाष्प के साथ हवा में उड़ जाता है इससे तेल की हानि होती है। छाया में सूखते समय ध्यान रखना चाहिये कि पत्तियां एक जगह एकत्रित न होने पाये क्योंकि पत्तियों के एकत्रित होने से पत्तियां सड़ने लगती है जिससे तेल की गुणवत्ता खराब होती है। इसलिए पत्तियों को पलटते रहना चाहिये। इस प्रकार पत्तियां 4–5 दिन में सूख जाती है और इनका आसवन किया जा सकता है। ताजी पत्तियों का आसवन नही किया जाता है क्योंकि ताजी पत्तियों में तेल की मात्रा कम प्राप्त होती है, जबकि सूखी पत्तियों मे तेल की मात्रा अधिक पायी जाती है। सूखी पत्तियों का आसवन स्टेनलेश स्टील वाले टैंको में किया जाता है इस प्रकार 10–12 घंटे में पचौली का तेल पूर्णतः आसवित हो जाता है।

सिम–उत्कृष्ट

सिम–समर्थ

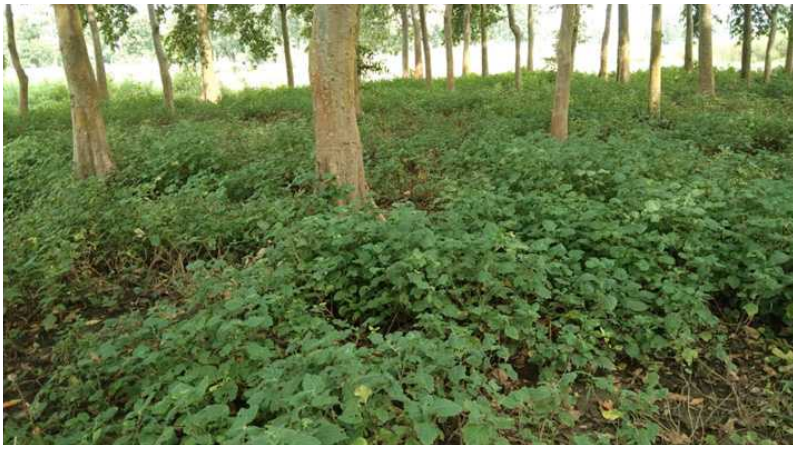

कृषि वानिकी में पचौली की खेती का दृष्य

बाजरे की उच्च उत्पादकता तकनीकी

राजसिंह
सस्य विज्ञान संभाग,
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र 329 मिलियन हेक्टेयर में से 140 मिलियन क्षेत्र शुद्ध फसल उत्पादन के अंतर्गत आता है इस क्षेत्र में से देश में बाजरा की खेती लगभग 7 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में प्रति वर्ष की जाती है तथा इसकी औसत उपज लगभग 1154 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर है तथा देश में इसका उत्पादन लगभग 8 मिलियन टन प्रति वर्ष होता है बाजरा की खेती अधिकतर वर्षा आधारित क्षेत्रों में की जाती है इन क्षेत्रों में आये दिन सूखे की समस्या रहती है जिसके कारण फसल उत्पादन बहुत प्रभावित होता है देश में बाजरा की खेती सबसे अधिक राजस्थान, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, गुजरात, हरियाणा एवं मध्य प्रदेश में की जाती हैबाजरे के दानों में लगभग 11.5 प्रतिशत प्रोटीन, 5 प्रतिशत फैट, 67 प्रतिशत कार्बोहायड्रेट तथा 2.7 प्रतिशत मिनरल्स होते है इसका पौधा पशुओं के लिए चारे के रूप में प्रयोग किया जाता है अतः बाजरा बहुत महत्वपूर्ण फसल है बाजरा शुष्क क्षेत्र की प्रमुख खाद्यान्न फसल है। राजस्थान में बाजरे की खेती लगभग 5.1 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में प्रतिवर्ष की जाती है तथा उत्पादन लगभग 4.45 मिलियन टन प्रतिवर्ष होता है लेकिन बाजरा की औसत उपज लगभग 873 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर है जो बहुत ही कम है। वर्तमान औसत उपज को बढाने के लिए उन्नत तकनीकियों का उपयोग करना बहुत ही आवश्यक है । अतः बाजरे की खेती करन के लिए निम्न उन्नत तकनीकियों का उपयोग कर फसल उत्पादन को बढाया जा सकता है ।

भूमि की तैयारी

बाजरे की खेती विभिन्न प्रकार की भूमियों में की जा सकती है । लेकिन बलुई एवं बलुई दुमट भूमि में बाजरा की खेती सर्वोत्तम होती है । बाजरा की खेती के लिए एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल या डिस्क हैरो से करने के उपरान्त एक जुताई क्रोस हैरो के रूप में करके पाटा लगाकर खेत को समतल कर देना चाहिए । जहॉ संरक्षित खेती के अन्तर्गत बाजरे की फसल उगाई जाती है वहॉ पर शून्य भूपरिष्करण ही रखते हैं । तथा केवल जीरो टिल मशीन द्वारा फसल की बुवाई की जाती है । भूमि की उर्वराशक्ति बनाये रखने एवं फसलों की पोषक तत्वों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए बाजरे की फसल के लिए भूमि की तैयारी के समय 5 टन गोबर की खाद या कम्पोस्ट खाद अच्छी प्रकार मिट्टी में मिला देनी चाहिये ।

उन्नत किस्मों का प्रयोग

बाजरे की अधिक पैदावार के लिए उन्नत किस्मों का प्रयोग करना बहुत ही आवश्यक है। विभिन्न अनुसंधान संस्थानों द्वारा बाजरे की अनेक किस्में विकसित की गई हैं। सारणी 1 में बीज की किस्म एवं उसकी गुणवत्ता अच्छी होनी चाहिये। बाजरे की अनेक संकुल एवं संकर किस्में विकसित की गई हैं तथा इनके द्वारा अनाज एवं चारे की अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है।

सारणी 1: बाजरे की अधिक पैदावार के लिए उन्नत किस्में

किस्म	पकने की अवधि (दिनों में)	औसत अनाज (किग्रा./है.)	चारा उपज (किग्रा./है.)
पूसा कम्पोजिट 443	70–80	1600–1800	3500–4000
पूसा कम्पोजिट 383	75–85	2200–2400	4000–4500
पूसा हाइब्रिड 415	75–78	2300–2500	4000–4500
आर एच बी 177	70–75 दिन	1700–1800	3000–3500
एम पी एम एच 17	65–70 दिन	1600–1800	2000–2200

राज 171	82–87	1200–1500	4000–4200
सी जेड पी 9802	74–82	1400–1800	4000–4500
एम पी 383	75–80	1500–2000	3500–4000
एच एच बी 67 ईम्प्रूड	65–70 दिन	1200–1500	2000–2200
जे एच बी 538	70–75 दिन	1700–1800	3000–3500
आर एच बी 121	75–80 दिन	1800–2200	3000–3200
जी एच बी 719	70–75 दिन	1500–1800	3500–4000

बीज दर एवं बुवाई की विधि

बाजरे की बुवाई का समय किस्मों के पकने की अवधि पर बहुत निर्भर करता है। बाजरे की दीर्घावधि (80–90) दिनों में पकने वाली किस्मों की बुवाई जुलाई के प्रथम सप्ताह में कर देनी चाहिये। मध्यम अवधि (70–80 दिनों) में पकने वाली किस्मों की बुवाई 10 जुलाई तक कर देनी चाहिये तथा जल्दी पकने वाली किस्मों (65–70 दिन) की बुवाई 10 से 20 जुलाई तक की जा सकती है। बाजरे की फसल के लिए 4–5 किग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर पर्याप्त होता है। अच्छी उपज के लिए खेत में पौधों की उचित संख्या होनी चाहिये। बाजरे की बुवाई पंक्तियों में 45 से 50 सेमी. की दूरी पर तथा पौधे से पौधे की दूरी 10 से 15 से. मी. रखनी चाहिये। संरक्षित खेती के अन्तर्गत खेत में बिना जुताई के सीधे जीरो ड्रिल मशीन द्वारा बुवाई की जाती है

खाद एवं उर्वरक

फसल के पौधों की उचित बढ़वार के लिए उचित पोषक प्रबंधन का होना आवश्यक है। अतः भूमि की तैयारी करते समय बाजरे की फसल के लिए 5 टन अच्छी सडी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट खाद प्रयोग करनी चाहिये। इसके पश्चात् बाजरे की वर्षा आधारित फसल में 40 किग्रा. नाइट्रोजन व 40 किग्रा. फॉस्फोरस प्रति हैक्टेयर की आवश्यकता होती है। बुवाई करते समय 44 किग्रा. यूरिया एवं 250 किग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट या 87 किग्रा. डी. ए.पी. व 9.5 किग्रा. यूरिया खेत में प्रति हैक्टेयर की दर से देना चाहिये। उर्वरक सीड कम फर्टिलाइजर ड्रिल के द्वारा बुवाई के साथ देना लाभप्रद रहता है। शेष 20 किग्रा. नाईट्रोजन देने के लिए फसल जब एक महिने की हो जाये तो निराई–गुडाई करने के पश्चात् यदि खेत में उचित नमी हो तो 43 किग्रा यूरिया प्रति हैक्टेयर की दर से समान रूप से छिड़काव कर देना चाहिये। जहाँ पर सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो उस स्थिति में 63 किग्रा. नाईट्रोजन एवं 40 किग्रा. फॉस्फोरस की मात्रा प्रति हैक्टेयर की दर से प्रयोग करनी चाहिये। ध्यान रहे उर्वरकों का उपयोग मिट्टी की जांच के आधार पर ही करना चाहिये।

जल प्रबन्धन

शुष्क क्षेत्र मे ंकम वर्षा एवं नमी की कमी के कारण नमी को संचित करना आवश्यक है। पौधों की उचित बढ़वार के लिए नमी का सबसे महत्वूपर्ण स्थान है। वर्षा द्वारा प्राप्त जल के अधिक उपयोग के लिए खेत का पानी खेत में रखना बहुत ही आवश्यक है। इसके लिए खेत की चारों तरफ मेंड़बन्दी करनी चाहिये। इसके द्वारा खेत का पानी बाहर बहकर नहीं जायेगा तथा भूमि का जल कटाव द्वारा बचाव भी किया जा सकेगा। भूमि में उपलब्ध नमी का वाष्पीकरण द्वारा नुकसान को रोकने के लिए फसल की पक्तियों के बीच बिछावन का प्रयोग लाभप्रद रहता है। बिछावन के लिए खरपतवार या फसल के अवशेषों को प्रयोग में लिया जा सकता हैं। इसके अतिरिक्त फसल की बुवाई, मेड एवं कूंड विधि द्वारा वर्षा जल गहरे कूंडो में इक्ट्ठा होकर खेत में नमी अधिक दिनों तक संचित करता है। जिसके द्वारा फसल की अधिक पैदावार प्राप्त की जा सकती है।

सिचिंत क्षेत्रों के लिए जब वर्षा द्वारा पर्याप्त नमी न प्राप्त हो तो समय समय पर सिंचाई करनी चाहिये। बाजरे की फसल के लिए 3–4 सिंचाई पर्याप्त होती हैं ध्यान रहे दाना बनते समय खेत में नमी रहनी चाहिये। इससे दाने का विकास अच्छा होता हैं, एव दाने व चारे की उपज में बढ़ोतरी होती है।

पादप संरक्षण

दीमकः दीमक बाजरे के पौधे की जड़ें खाकर नुकसान

पहुँचाती हैं। दीमक के नियंत्रण के लिए खेत की तैयारी के समय अन्तिम जुताई पर एण्डोसल्फान 4 या क्यूनालफोस 1.5 प्रतिशत पाउडर की 20 से 25 किग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से भूमि में अच्छी प्रकार से मिला देनी चाहिये। इसके अतिरिक्त बीज को 4 मि.ली. क्लोरोपायरीफास या 2 मि. ली. इमीडाक्लोप्रिड प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करके बोना चाहिये। खड़ी फसल में यदि सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो तो सिंचाई के पानी के साथ 2 लीटर क्लोरोपाइरीफोस की मात्रा प्रति हैक्टेयर की दर से प्रयोग करनी चाहिये।

कातराः बाजरे की फसल को कातरे की लट प्रारम्भिक अवस्था में काटकर नुकसान पहुचाती है। कातरे के नियत्रण हेतू खेत के चारों तरफ घास को साफ करना चाहिये। कातरे के नियंत्रण हेतु क्यूनालफांस 1.5 प्रतिशत या मिथाइल पैरोथिमोन 2 प्रतिशत पाउडर की 20–25 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से भुरकाव करना चाहिये।

सफेद लटः सफेद लट का प्रौढ़ (भृंग) रात में परपौषी वृक्ष जैसे खेजड़ी, बेर, नीम इत्यादि पर अंडे देता है तथा इनसे लट तथा प्रौढ़ बनते हैं। लट की अवस्था में एक किलो बीज में 3 किलो कारबोफूरान 3 प्रतिशत या क्यूनालफास 5 प्रतिशत कण मिलाकर बुवाई करनी चाहिये।

रूट बगः रूट बग के प्रकोप की रोकथाम हेतु 25 किलो मिथाइल पैराथियान 2 प्रतिशत चूर्ण का प्रति हैक्टेयर की दर से भुरकना चाहिये। इसके अतिरिक्त क्यूनालफास की 1.25 लीटर मात्रा को 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिये।

जोगियाः इस रोग के कारण पौधे के पत्तियों के रूप की संरचना बदल जाते है, तथा प्रभावित पौधे की पत्तियां पीली या सफेद रंग की हो जाती है। इसकी रोकथाम के लिए रोगरोधी किस्मों जैसे– एच.बी. 67, आर.एच.बी. 121, राज 171, सी.जेड़.पी.–9802 की बुवाई करनी चाहिये, तथा बीज को एप्रोन एम.डी. 35 की 6 ग्राम मात्रा प्रति किलो या एग्रोसन जी.एन. 2.50 ग्राम मात्रा प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करके बोना चाहिये। रोग से प्रभावित पौधे उखाड़ देने चाहिये तथा खड़ी फसल में बुवाई के 25–30 दिन बाद मैन्कोजेब नामक फफूंदनाशक की 2 किग्रा. मात्रा को 500 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव कर देना चाहिये।

अरगट या चेपाः यह बीमारी पौधों के सिट्टों पर शहद जैसे गुलाबी पदार्थ के रूप में दिखाई देती है। कुछ दिन बाद यह पदार्थ भूरा एवं चिपचिपा हो जाता है तथा बाद में काले पदार्थ के रूप में बदल जाता है। फसल पर सिट्टे बनते समय 2.5 किलो जिनेब या 2 किलो मेन्कोजेब के कम से कम 3 छिड़काव तीन चार–दिनों के अन्तराल पर करने चाहिये। प्रमाणित एवं उपचारित बीज को बुवाई में प्रयोग करना चाहिये।

स्मटः इस बीमारी के कारण पौधे के सिटट्ों में दाने हरे रंग एवं बड़े आकर के हो जाते है। बाद में ये दाने काले रंग के हो जाते है तथा पूरे फफूंद के स्पोट से भरे होते है। इस बीमारी के नियंत्रण हेतु प्रमाणित बीज का प्रयोग करना चाहिये। उचित फसल चक्र अपनाना चाहिये। तथा फसल पर 1.50 किलो विटाबैक्स को 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिये।

पत्ती धब्बाः इस बीमारी के लक्षण पत्तियों की निचली सतह पर हल्के भूरे काले रंग के नाव के आकार के धब्बों के रूप में देखे जा सकते है। जीनेब नामक फफूंद नाशक की 0.20 प्रतिशत घोल का छिड़काव करने पर इस बीमारी को नियंत्रित किया जा सकता है।

खरपतवार नियंत्रण

बाजरे की फसल में अनेक प्रकार के चौड़ी एवं संकरी पत्ती वाले खरपतवार फसल के पौधों के साथ नमी, पोषक तत्वों एवं स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा कर उपज को 25 से 60 प्रतिशत तक कम कर देते हैं। फसल से अच्छी पैदावार प्राप्त करने हेतु खरपतवारां का उचित नियन्त्रण बहुत ही आवश्यक है बाजरे की फसल उगने के समय से ही अनेक प्रकार के खरपतवार जैसे चन्दलिया, सफेद फूली, बुई, कांटी, मंची, लोलरू, मोंथा, सोनेला, ऊंट गूगरा, भूरट इत्यादि फसल को हानि पहुंचाते हैं। खरपतवारों के नियंत्रण हेतु फसल की बुवाई के 2 दिन पश्चात् तक एट्राजिन नामक खरपतवारनाशी की बाजार में उपलब्ध 2.00 कि. ग्रा./है. मात्रा को बुंवाई से पहले 500 लीटर पानी में घोल बनाकर समान रूप से छिड़काव करना चाहिये। इसके उपरान्त जब फसल 25 से 30 दिन की हो जाये तो एक गुडाई कर देनी चाहिये। इसके अतिरिक्त

खरपतवारों के नियंत्रण हेतु फसल की बुवाई के 2 दिन पश्चात् तक पैन्डीमेथालीन (स्टोम्प) खरपतवार नाशी की बाजार में उपलब्ध 3.30 लीटर मात्रा को 500 लीटर पानी में घोल बनाकर समान रूप से खेत में छिड़काव कर देना चाहिए। इसके उपरान्त जब फसल 25–30 दिन की हो जाए तो एक बार कस्सी से गुडाई कर देनी चाहिए। यदि मजदूरों की समस्या हो तो बाजार में उपलब्ध 2,4–डी की 1.00 ली. मात्रा को प्रति हैक्टेयर की दर से या बाजार में उपलब्ध इमेजीथाइपर की 750 मि.ली. मात्रा को प्रति हैक्टेयर की दर से 500 लीटर पानी में घोल बना कर बुवाई के 20–25 दिन बाद छिड़काव कर देना चाहिए।

उचित फसल चक्र

भूमि की उर्वराशक्ति बनाये रखने एंव अच्छी पैदावार हेतु उचित फसल चक्र बहुत ही आवश्यक हैं निम्नलिखित फसल चक्र प्रयोग करने से बाजरे की अच्छी पैदावार प्राप्त की जा सकती है।

असिंचित क्षेत्रों के लिए

बाजरा–मोठ

मोठ– बाजरा– ग्वार

बाजरा–मोठ –ग्वार–बाजरा

बाजरा–ग्वार

बाजरा– मूंग

सिंचित क्षेत्रों के लिए

बाजरा–गेहूं–मूंग

बाजरा–जीरा

बाजरा–सरसों–मूंग

बाजरा– गेहूं–ग्वार

बाजरा– गेहूं

बाजरा–सरसों

परम्परागत मिश्रित खेती की अपेक्षा बाजरे को अन्तः फसलीय पद्वति में उगाने से अधिक पैदावार एंव लाभ प्राप्त किया जा सकता है। प्रयोग के आधार पर बाजरे को मोठ के साथ मोठ़बाजरा (2:1) एवं मोठ़बाजरा (3:1) अन्तः फसलीय पद्वति काफी लाभदायक है।

उन्नत बीज पैदा करना

किसान अपने खेत पर संकुल किस्म के बाजरे का बीज स्वंय पैदा कर सकते हैं। बीज के लिए फसल उगाते समय अनेक सावधानियाँ, जैसे बीज के लिए बोई गई फसल के 200 मीटर तक बाजरे की दूसरी फसल नहीं होनी चाहिये। जिसे खेत में फसल उगानी हो उसमें पिछले वर्ष बाजरा नहीं उगाया गया हो तथा बुवाई के लिए प्रमाणित बीज ही प्रयोग किया गया हो। इसके अतिरिक्त समय समय पर खेत से अन्य किस्मों के पौधों को निकालना, खरपतवार, कीड़े एवं बिमारियों का नियंत्रण आवश्यक है। खेत के चारों तरफ कम से कम 10 मीटर फसल छोड़कर बीज के लिए लाटे (बाली) को अलग काटकर अच्छी प्रकार से सुखा लेना चाहिये। सिट्टे (लाटे) की गहाई कर दानों की ग्रेडिंग कर लेनी चाहिये, तथा अच्छे आकार के बीज को धूप में सुखाकर 8–9 प्रतिशत तक नमी रहने पर कीटनाशक व फफूंदनाशक से उपचारित कर लोहे की टंकियों में भरकर अच्छी प्रकार से बन्द कर देना चाहिये। इस बीज को अगले वर्ष बुवाई के लिए प्रयोग किया जा सकता है।

कटाई एवं गहाई

बाजरे के सिट्टे जब हल्के भूरे रंग में बदलने लगे तथा पौधे सूखने लगें तो फसल की कटाई कर लेनी चाहिये। इस समय दाने सख्त होने लगते हैं, तथा नमी लगभग 20 प्रतिशत रहती है। कटाई के बाद सिट्टों को अलग कर लेना चाहिये तथा अच्छी प्रकार सूखाकर थ्रैसर द्वारा दानों को अलग कर लिया जाता है। थ्रैसर की सुविधा नहीं होने पर सिट्टों को डंडो द्वारा पीटकर दानों को अलग कर लिया जाता हैं दानों को साफ कर अच्छी प्रकार सुखा लिया जाता है।

उपज एवं आर्थिक लाभ

उन्नत विधियों द्वारा बाजरे की वर्षा आधारित फसल से औसतन 15– 20 कुन्तल दाने की एवं 35 से 40 कुन्तल प्रति हैक्टेयर सूखे चारे की उपज प्राप्त हो जाती है। उपरोक्त विधियों को प्रयोग करते हुए यदि बाजरे की खेती की जाये तो मरू क्षेत्र में बाजरे की खेती से अधिक पैदावार एंव लाभ प्राप्त किया सकता है।

दलहनी फसलों में कीट प्रबंधन

सुरेश एम् नेबापुरे, सागर डी एवं संजीव रंजन सिन्हा
कीटविज्ञान संभाग
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली–110012

दालें भोजन का एक महत्वपूर्ण घटक हैं जिसमें पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन, फाइबर, विटामिन और खनिज होते हैं जो इसे मूल्यवान बनाते है और पोषण और खाद्य सुरक्षा प्रदान करते हैं। भारत विश्व के दालों के उत्पादन में लगभग 25 प्रतिशत और खपत में 27 का योगदान देता है। इस प्रकार उत्पादन और खपत की दृष्टि से भारत दुनिया में प्रथम स्थान पर है। भारत में प्रति व्यक्ति दाल की खपत लगभग 41–42 ग्राम प्रतिदिन है। दलहनी फसलों का उत्पादन करने वाले मुख्य राज्यों में मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान और आंध्र प्रदेश आदि शामिल हैं। दालों में, चना 48%, अरहर 17%, उड़द 10%, मूंग 7% और अन्य दलहनों का योगदान कुल दालों के उत्पादन में 18% है। हालांकि दलहन के उत्पादकता क्षेत्र में वृद्धि हुई है परन्तु फिर भी आपेक्षित उत्पादकता न होने से किसानो में चिंता का विषय बना रहता है। कम उत्पादकता के लिए जिम्मेदार विभिन्न कारणों में विभिन्न जैविक और अजैविक कारण शामिल हैं। इन जैविक कारणों में पादप रोगों के साथ विभिन्न कीटों की समस्या भी एक प्रमुख कारण है। फली छेदक विशेष रूप से अमेरिकन बोलवर्म/ चना फली छेदक, (*हेलिकोवर्पा आर्मीजेरा*) और धब्बेदार फली छेदक (*मरुका विट्राटा*) और चूसक कीटों से अत्याधिक हानि हो रही हैं। उत्पादकता बढ़ाने और दालों के उत्पादन में स्थिरता हासिल करने के लिए इन कीटों के प्रबंधन के लिए पारिस्थितिक रूप से और आर्थिक रूप से स्वीकार्य दृष्टिकोण की आवश्यकता है। इस विषय की आवश्यकता को समझते हुए हमने प्रमुख कीटों, उनके प्रबंधन के बारे में यहाँ चर्चा की है और इनके विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला है।

अमेरिकन बोलवर्म (चना फली छेदक), *हेलिकोवर्पा आर्मीजेरा*

यह देश भर में सबसे अधिक पाए जाने वाले प्रमुख फली छेदक में से एक है। इसके अंडे हरे–पीले और गोल होते हैं। सूंडी हरे रंग की होती है गहरे भूरे रंग की धारियां होती है। वे हरे रंग से भूरे रंग में भिन्नता दिखाते हैं। प्यूपा गहरे भूरे रंग का होता है और उसके पीछे के सिरे पर स्पष्ट रीढ़ (स्पाइन) होती है। मादा शलभों में पीले रंग के अग्र–पंख होते हैं और नर पतंगे हरे–भूरे रंग के, और गहरे रंग के अनुप्रस्थ बैंड बाहर की ओर होते हैं। पिछले पंख गहरे भूरे रंग के चौड़े सीमांत पट्टी के साथ हल्के भूरे रंग के होते हैं जिनके आधार पर छोटे भूरे रंग के निशान होते हैं। वयस्क पतंगों में 35–40 मिमी का पंख होता है। मादाएं पौधे के सभी हिस्सों पर ज्यादातर युवा शाखा और कलियों पर अकेले कई सौ अंडे देती हैं। 3–4 दिनों के भीतर अंडों से हरे रंग की नवजात सुंडियां ऊतकों को छीलकर हरी पत्तियों पर खाते हैं और फिर जैसे जैसे बड़े होते वे कलियों और फली की तरफ बढ़ते हैं। 10–12 दिनों के उपरांत सूंडी से प्यूपा बन जाते हैं। ज्यादातर नुकसान फली में छेद बनाने और बीजों को खाने से होता हैं।

इस कीट की निगरानी फेरोमोन ट्रैप @ 5 ट्रैप/हेक्टेयर के उपयोग से की जा सकती है। विभिन्न जैवकीटनाशियो में एनपीवी (न्यूक्लियर पॉलीहेड्रोसिस वायरस) का उपयोग काफी प्रभावी साबित हुआ है और यह सूंडी की 70% से भी अधिक रोकथाम करता है। विभिन्न जैवनियन्त्रण उपायों में कैंपोलेटिस क्लोरिडा, ट्राइकोग्रामा और ब्रैकन हेबटोर अच्छे प्रतिनिधि साबित हुए है।

धब्बेदार फली छेदक (*मरुका विट्राटा)*

यह कीट दालों की उपज को कम करने वाले प्रमुख कीटों में से एक है जो लगभग 39 फसलों में क्षति करता हुआ पाया गया है। भारत में इसे उड़द, मूंग, लोबिया और छोटी अवधि के अरहर में यह प्रमुख कीट के रूप में माना गया है। मादा कीट फूलों, कलियों और अंकुरों पर अंडे देती है। सूंडी कलियों में छेद करती है। जैसे–जैसे सूंडी बड़ी हो जाती है वो फूलों और पत्तियों की जाला (वेब) बनातीं है और अंदर ही रहकर फीड (आहार) करतीं है। इसका इस तरह छिपकर आहार करने की आदत के कारण इस कीट का प्रबंधन करना मुश्किल हो जाता है।

जाला (वेब)

सूंडी

बीट आर्मीवॉर्म (*स्पोडोप्टेरा एक्सिगुआ)*

यह मुख्य रूप से चना, कपास, मूंगफली, ज्वार, सोयाबीन, गन्ना, और तंबाकू का एक कीट है। इसकी मादाएं पत्तियों की निचली सतह पर 50 से 150 अंडे गुच्छों में देती हैं। युवा सुंडियां शुरू में चनों के पत्तों पर समूह में खाती हैं तथा बड़ी होने पर यही सुंडियां एकल होकर पर्णसमूह (पत्तियों) पर बड़े अनियमित छेद बनाते हुए खाती हैं।

सूंडी (बीट आर्मीवॉर्म)

वयस्क

फली मक्खी (*मेलनोग्रॉमीजा ऑब्टूसा)*

फली मक्खी आमतौर पर लंबी अवधि के किस्मों में 70–80% तक क्षति पहुंचाती है। वयस्क मक्खियाँ छोटी काली रंग की होती हैं। मादाएं आंशिक रूप से परिपक्व फली की दीवार के माध्यम से (through the wall) अंडे देती हैं। अंडे से निकलने के बाद मैगट्स (डिम्बीक) हरे रंग के विकसित बीज को खाते हैं। यह फली के अंदर अपना जीवन चक्र पूरा करता है, इसलिए बाहर से क्षतिग्रस्त फली को पहचानना बहुत मुश्किल होता है। मैगट्स कोशवास्था में जाने से पहले फली के दीवार में खिड़की जैसा छेद बना देते है जिससे वयस्क फली के बाहर आते है। संक्रमित बीज अंकुरित नहीं हो पाते हैं। छिपी हुई रहने की आदत और ''खिड़की'' के गठन तक कोई बाहरी लक्षण नहीं होने के कारण इसकी निगरानी करना मुश्किल होता है। गैर दैहिक कीटनाशक जैसे डेल्टामेथ्रिन, लैम्ब्डा–साईहैलोथ्रिन आदि वयस्क मक्खियों को मारने के लिए उपयोगी साबित होते हैं। वयस्क मक्खियों को आकर्षित करने और मारने के लिए गुड़ के साथ संपर्क (स्पर्श) कीटनाशक का संयोजन अधिक प्रभावी हो सकता है।

प्लूम मॉथ (*एक्सेलास्टिस ऑटोमोसा)*

प्रायः यह कीट फूल आने के पहले से फली बनने तक ज्यादा प्रभावी (गंभीर) होता है। सूंडी कली में, पनपती फली में छेद करती है और विकसित बीजोंको भी खाती है। पूर्ण विकास होने के बाद इसका प्यूपीकरण डंठल पर या फली की सतह पर होता है। कोष (प्यूपा) से निकलने के बाद, नर और मादा, जो भूरे रंग के होते हैं, मिलन करते है और मादा कलियों और फली पर अंडाकार अंडे देते हैं। इसका एक जीवनचक्र लगभग 4 सप्ताह का होता है।

ब्लू बटरफ्लाई (*लंपिडेस बोएटिक्स)*

इस कीट के मादा नीले अंडे एकल रूप से अधिमानतः कलियों पर देती है। हरे रंग का, अंडाकार–चिपटे (सपाट) आकार की सूंडी कलियों, फूलों और निविदा फली को खाती है। अन्य फली छेदक की तुलना में यह कम महत्वपूर्ण है। यह कीट अरहर के अलावा लोबिया, मटर और सेम पर भी नुकसान करता है।

काला चेंपा (*एफिस क्राक्सीवोरा)*

यह चना का एक महत्वपूर्ण कीट है जो चने में स्टंट रोग के विषाणु फैलाने (वैक्टर) का काम करता है। यह चना, मसूर, लोबिया, मूंगफली, अल्फाल्फा और अन्य फलियों सहित कई अनाज फलियों को नुकसान पहुंचाता है। निम्फ (अर्भक) और वयस्क दोनों ही पत्तों, तनों और फली से रस

चूसते हैं और ज्यादातर युवा पत्तियों और नई शाखाएँ पर उपनिवेशित करते हैं जो कि विशेषता से विकृत हो जाते हैं। उपज में भारी कमी हो सकती है और यदि संक्रमण प्रारंभ से ही है तो यह पौधों को पूरी तरह से नष्ट कर सकता है।

सेमीलूपर (*ऑटोग्राफा निग्रिसिगना)*

यह चना का एक सामयिक कीट है, और हमेशा मिश्रित रूप से अमेरिकन बोलवर्म और बीट आर्मीवॉर्म के साथ आता है। यह पत्तियों पर समूह में अंडे देता है जो 40 तक होते है। सूंडी हरी और उसकी लम्बाई २५ मिमी तक होती है। यह मृदा में प्यूपीकरण करता है और इसका पूरा जीवन चक्र लगभग 4–5 सप्ताह में पूरा होता है। सूंडी कलियों, फूलों, कोमल फली और विकासशील बीजों पर को खाती है।

फली बग (*क्लाविग्रला गिब्बोंसा)*

ये कीड़े पत्तियों, तने, टहनियों और फली सहित अन्य कोमल भागों पर अंडे देते हैं। अंडों से निकलने के बाद निम्फ्स फली की दीवार के जरिए बीज से रस चूसने लगते हैं। बीजों का रस चूसने से बीजों पर गहरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं और इसके बाद सिप्रोफाइटिक कवक की वृद्धि होने से बीज सिकुडने लगते हैं, जिसके कारण बीज अंकुरण के लिए और खपत के लिए बेकार हो जाते हैं।

एरीयोफिड घुन (*एसेरिया कजानि)*

माइट की यह प्रजाति अधिक आम है और व्यापक रूप से पायी जाती है और यह अरहर का एक विशिष्ट कीट है। गुलाबी रंग की माइट युवा पत्तियों की निचली सतह पर पाई जा सकती है। यह प्रजाति अधिक विनाशकारी हो जाती है क्योंकि यह अरहर के बाँझ मोजेक विषाणु रोग (वायरस) (sterility mosaic virus) को फैलाने वाला वैक्टर है। संक्रमित पौधे मोजेक पैटर्न के साथ हल्के हरे या क्लोरोटिक हो जाते हैं। अधिकांश संक्रमित पौधों में फूल नहीं होते हैं।

ब्लिस्टर बीटल (*मायलाब्रिस पुस्तुलाटा)*

मादाएं मिट्टी में अंडे देती हैं और लार्वा (ग्रब्स) मिट्टी में रहते हैं और ये टिड्डी के अंडे खाते हैं। आम तौर पर सितंबर के दौरान वयस्क की गतिविधि ज्यादा पाई जाती है। वयस्क हानिकारक होते है जो फूल, कोमल फली और पत्तियों को खाते है। क्योंकि वयस्क की गतिविधि सुबह के दौरान धीमी होती है, इसलिए उचित सुरक्षा के साथ हाथ से इकट्ठा करके इन्हें नष्ट किया जा सकता है।

एकीकृत कीट प्रबंधन

1. कटाई के उपरांत गहरी जुताई करें।
2. खेत की स्वच्छता, फसल के अवशेष और अनअपघटित पौधों के हिस्सों का समय पर खेतों से हटा दे।
3. प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग करें।
4. पक्षी के पर्चे @ 50/हेक्टयर लगाएं।
5. जैविक पक्षी पर्च के रूप में चने की बुवाई के समय 5 ग्राम रबी ज्वार या सूरजमुखी के बीज भी मिलाएं।
6. कीट निगरानी के लिए फेरोमोन ट्रैप (पाश) @ 5/एकड़ लगाएं।
7. कीट नियंत्रण के लिए प्रकाश पाश (1 प्रकाश पाश / 5 एकड़) की लगाएं।
8. परजीवी के गुणन के लिए धनिया को अंतर्फसल के रूप में लगाएं।
9. ट्राइकोग्राम्मा किलोनिस @ 1.5 लाख/हेक्टयर प्रति सप्ताह की दर से चार सप्ताह छोड़े।
10. अमेरिकन बोलवर्म, हेलिकोवर्पा आर्मीजेरा से बचाव के लिए 5% नीम की गुठली का उद्वरण (नीम सीड करनल

एक्सट्रैक्ट) 1% साबुन के घोल के साथ मिलाकर छिड़काव करें।

11. HaNPV (एच ए एन पी वी) 500 एल ई (LE) प्रति हेक्टर को 0.1% टीनोपोल और 0.5% गुड़ में मिलाकर छिड़काव करने से अमेरिकन बॉलवर्म की समस्या से निजात पाया जा सकता है।
12. SlNPV (यस एल एन पी वी) 250 एल ई (ले) प्रति एकड़ या बी टी @ 1 कि. ग्रा. प्रति हेक्टर की दर से छिड़काव करने से बीट आर्मीवर्म और तम्बाकू की सूंडी की रोकथाम की जा सकती है।

उप्रीलिखित प्रबंधन के अलावा दलहन की क्षति पहुँचाने वाले कीटों के लिए निम्नलिखित कीटनाशकों का भी प्रयोग किया जा सकता है।

क्रम सं.	कीट नाशक	कीट	मात्रा (ग्रा/मि.ली. प्रति लीटर)
1.	एजाडायरेक्टिन 0.03% (300 पी पी एम)	फली छेदक और मक्खी	5 मि. ली./ लीटर
2.	बैसीलस थुरिंजेंसिस कुर्सटेकि सीरोटाइप - h-39,3b, स्ट्रेन Z–52	अमेरिकन बोलवर्म, *हेलिकोवर्पा आर्मीजेरा*	500–750 ग्रा./हेक्टर
3.	बेनफुराकार्ब 40: ई सी	फली छेदक	5 मि. ली./लीटर
4.	क्लोरेंट्रानिलीप्रोल18.5% एस सी	फली छेदक	0.3 मि. ली./लीटर
5.	डेल्टामेथ्रिन 2.8% ई सी	फली छेदक और मक्खी	1 मि. ली./लीटर
6.	इमामेक्टिन बेंजोएट 5% एस जी	फली छेदक	0.3–0.44 ग्रा/लीटर
7.	फ्लूबेंडामाइड 39.35% एस सी	फली छेदक	0.2 मि. ली./लीटर
8.	इन्डोक्साकार्ब 14.5% एस सी	फली छेदक	0.4–0.7 मि. ली./लीटर
9.	लैम्ब्डा–साईहैलोथ्रिन 5% ई सी	फली छेदक	1 मि. ली./लीटर
10.	लूफेनूरोन 5.4% ई सी	फली छेदक और मक्खी	0.6–1.2 मि. ली./लीटर
11.	क्विनॉलफॉस 25% ई सी	फली छेदक	1.4–2.8 मि. ली./लीटर
12.	स्पायनोसेड 45% एस सी	फली छेदक	0.16 मि. ली./लीटर
13.	थायोडीकार्ब 75% डब्लू पी	फली छेदक	2 ग्रा/लीटर

सुरक्षित बीज भण्डारण

[1]संदीप कुमार लाल, [2]डी. के. यादव एवं [3]पी. के. सिंह
[1,2]बीज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संभाग, [3]संरक्षित कृषि प्रौद्योगिक केन्द्र
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली–12

देश में कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए बीज की गुणवत्ता बहुत महत्वपूर्ण है। खेत में बेहतर फसल व अधिक उपज लेने के लिए स्वस्थ एवं उत्तम बीज आवश्यक हैं। फसल पकने के बाद से अगली बुवाई तक बीज एजेन्सीयों व किसानों को बीजों का सुरक्षित भण्डारण करना पड़ता है। समुचित बीज भण्डारण से बीज की गुणवत्ता में किसी प्रकार का सुधार संभव तो नहीं है केवल गुणवत्ता को संरक्षित किया जा सकता है। फसल की कटाई के पश्चात बीज की गुणवत्ता, बीज की अंकुरण क्षमता तथा बीज ओज को भौतिक कारक प्रभावित करते हैं, जैसै मौसम की आर्द्रता, तापमान, बीज में नमी प्रतिशत, भण्डारगृह अवस्था। ये सभी भौतिक कारक कटाई उपरांत जैविक कारकों, जैसे कीट, चूहे, पक्षी, माइट्स, फफूंद एवं जीवाणु आदि को प्रभावित करते हैं, जिससे बीज में गुणात्मक एवं मात्रात्मक हानि होती है। हमारे देश में उचित भण्डारण के अभाव में लगभग 10 प्रतिशत बीज क्षतिग्रस्त हो जाते है। कीटों की क्रियाशीलता को रोकने के लिए विशेष प्रबंधन की आवश्यकता होती है जिससे बीजों की उत्पादन क्षमता को संरक्षित किया जा सकता है। बीज गुणवत्ता को उचित नमी एवं तापमान पर भण्डारण करने से लम्बे समय तक बरकरार रखा जा सकता है। इसके लिए निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए।

1. सर्वप्रथम फसल की कटाई पूरी पकने तथा साफ सूखे मौसम में करनी चाहिए। बीजों के रखरखाव एवं भण्डारण के लिए बीज की भौतिक दशा को सुधारना बहुत महत्वपूर्ण है; कटाई के उपरांत बीज को सीधे भण्डारगृह में रखने से उनमें कीटों का प्रकोप बहुत तेजी से होता है। खलिहान से बीज को अच्छी तरह से सफाई तथा सुखाने के बाद ही भण्डारण करना चाहिए। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सब्जियों के बीजों में 6–8 प्रतिशत नमी तथा खाद्यान्नों के बीजों में 10–12 प्रतिशत नमी होनी चाहिए। आमतौर से 30° से. तापमान, 60–70 प्रतिशत आर्द्रता एवं 8–10 प्रतिशत बीज नमी होने पर सभी प्रकार के बीजों को एक वर्ष तक सुरक्षित रखा जा सकता है। सुखाने के बाद ग्रेडिंग करना अति आवश्यक होता है। बीज को ग्रेडिंग करने से पहले बीज संसाधनशाला (प्रोसेसिंग प्लांट) की सफाई अच्छी प्रकार से करना चाहिए। ग्रेडिंग करने से बीज की भण्डारण क्षमता में सुधार होता है क्योंकि ग्रेडिंग के दौरान छोटे, कटे हुए हल्के दानें एवं खरपतवार आदि के बीज अलग हो जाते हैं जिन पर कीटों का प्रकोप अपेक्षाकृत अधिक व शीघ्र होता है। बीज संसाधनशाला के फर्श तथा दीवारों आदि में दरारें नहीं हानी चाहिए क्योंकि दरारों में कीट छिपे रहते हैं, सुराखों एवं दरारों को यथोचित गीली मिट्टी या सीमेंट से भर दें। बीज संसाधनशाला में ग्रेडिंग से पूर्व 4 लीटर मैलाथियान 50 ई.सी. (सॉइथिऑन) अथवा डेल्टामेथ्रिन 2.8 ई.सी. (डेसीस) या डी.डी.वी.पी. को 100 लीटर पानी (40 मिली. कीटनाशी/लीटर पानी) में घोलकर फर्श तथा दीवारों आदि हर जगह छिड़काव करना चाहिए। आमतौर से कीटों का आक्रमण बीज संसाधनशाला से पूर्व जहां कटाई के बाद बीजों को रखा जाता है वहीं से आरंभ हो जाता है। इसलिए बीज की ग्रेडिंग में देरी नहीं करनी चाहिए; यदि बीजों की शीघ्र ग्रेडिंग करना संभव न हो तो ग्रेडिंग से पहले बीज को एल्युमिनियम फॉस्फाइड से धुमण अवश्य करना चाहिए। सामान्यतः धुमण के 3–5 दिन बाद ग्रेडिंग की जा सकती है।
2. बीज की ग्रेडिंग एवं भण्डारण के दौरान यदि दीमक का प्रभाव दिखाई दे तो दीवारों, छतों एवं फर्श आदि पर क्लोरोपायरिफॉस 2 मि.ली. प्रति लीटर की दर से घोल बनाकर समय–समय पर छिड़काव करते रहना चाहिए। बीज को ग्रेडिंग करने के बाद भण्डारगृह में रखने से पूर्व मैलाथियान 50 ई.सी. (सॉइथिऑन)

6 मि.ली. अथवा डेल्टामेथ्रिन 2.8 ई.सी. (डेसीस) 4 मि .ली प्रति 100 कि. ग्रा. बीज की दर से उपचारित करना चाहिए । इस बात का ध्यान रखें कि उपचारित बीज को खाने के लिए प्रयोग न करें।

3. बीज को ग्रेडिंग करने के पश्चात भण्डारगृह में रखना चाहिए तथा भण्डारण शुष्क एवं ठंडे वातावरण में करें। भण्डारण गृह के लिए गोदाम पक्का, नमी रोधक, जालीदार खिड़की युक्त हो। बीज को रखने से पूर्व भण्डारण कक्ष पूर्णतयाः साफ सुथरा व नमी रोधक होना चाहिए तथा मैलाथियॉन/ डेल्टामेथ्रिन का छिड़काव अवश्य करना चाहिए। भण्डारगृह इस प्रकार का होना चाहिए कि उसमें कोई खिड़की न हो तथा उसमें हवा आवागमन रहित केवल एक दरवाजा होना चाहिए। भण्डारगृह में कमरे के आकार के अनुसार एक – दो एक्जास्ट फैन/ निकास पंखे होने चाहिए। एक्जास्ट फैन का प्रयोग तभी करना चाहिए जब बीज गोदाम के बाहर का तापमान व आर्द्रता अंदर से कम हो। भण्डारण ागृह के पास पानी के निकास का उचित प्रबंध होना चाहिए।

4. भण्डारण करते समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि बीजों को रखने हेतु नई बोरियों का प्रयोग करें। पुरानी बोरियों में बीज को भरने से कीटों के फैलने की संभावना रहती है तथा पुरानी बोरियों में पहले भरी गई बीज चिपके रहते हैं जिससे मिश्रण की संभावना बनी रहती है। यदि पुरानी बोरियों का प्रयोग करना आवश्यक हो तो बोरियों को अच्छी प्रकार से साफ करके गर्म पानी में 50° सें. पर 15 मिनट तक भिगोएं या फिर उन्हें 40 मिली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 40 ग्रा. उेल्टामेथ्रिन 2.5 डब्ल्यू.पी. (डेल्टामेथ्रिन 2.8 ई.सी. की 38 मिली.) प्रति लीटर पानी के घोल में 10 से 15 मिनट तक भिगोकर तक तेज धूप में सुखाने के बाद ही प्रयोग करें।

5. भण्डारगृह में बीज को रखते समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि बिना ग्रेडिंग किया व ग्रेडिड बीज साथ में नहीं रखना चाहिए। सदैव उत्तम श्रेणी के बीज ही भण्डार में रखें। आमतौर पर एक फसल का बीज ही एक साथ रखना चाहिए क्योंकि प्रत्येक फसल के बीजों की भण्डारण क्षमता अलग–अलग होती है। तिलहन वाली फसलों में वसा अधिक होने के कारण इनकी भण्डारण क्षमता सबसे कम तथा गेहूँ, जौ, मक्का, ज्वार, बाजरा आदि बीजों कार्बोहाइड्रेट अधिक होने के कारण इनकी भण्डारण क्षमता अधिक होती है । दलहन वाली फसलों में प्रोटीन की मात्रा अधिक होने के कारण इनकी भण्डारण क्षमता तिलहन फसलों से अधिक तथा अनाज फसलों से कम होती है । अतः कुशल प्रबंधन के लिए अनाज, दलहन, तिलहन एवं सब्जियों के बीजों को लिए अलग–अलग भण्डारगृह में रखना चाहिए।

6. भण्डारगृह में बीज को रखते समय इस बात का भी ध्यान रहे कि बीज की बोरियों को जमीन पर नहीं रखना चाहिए। बीज की बोरियों को रखते समय लकड़ी के फट्टों/ पैलेट का प्रयोग उपयुक्त रहता है। पैलेट फर्श से आमतौर पर 9 इंच ऊँचे होने चाहिए तथा इन पैलेटों को गोदाम की दीवारों से 30 से.मी. की दूरी पर रखकर इन पर बीज की बोरियों को रखें। बीज रखते समय इस बात का भी ध्यान रहे कि बन्डल की ऊँचाई 3 मीटर (8–10 बोरियाँ) से ज्यादा नहीं होनी चाहिए।

7. भण्डारगृह का निरीक्षण नियमित रूप से करना चाहिए; विण्डो टेप व ग्रेन प्रोब के इस्तेमाल से कीटों के आगमन का अनुमान लगाकर उसका सही उपचार करना चाहिए। यदि गोदाम में कीट दिखाई दें तो तुरंत एल्युमिनियम फास्फाइड का धुमण करना चाहिए। 3 ग्राम की 3 गोली प्रति टन बीज के हिसाब से अथवा एक गोली प्रति घन मीटर क्षेत्रफल के हिसाब से बोरियों के ऊपर रखकर तुरंत पॉलीथीन की चादर से इस प्रकार ढक दें ताकि वायु का आवागमन न हो। दरवाजें आदि जहां से हवा तथा कीट के घुसने का अंदेशा हो, मिट्टी से बंद कर देना चाहिए। गर्मियों में धूमण की अवधि 5 दिन तथा सर्दियों में 12–15 दिन होनी चाहिए। धुमण क्रिया को 7–10 दिन के अंतराल पर 2 – 3 बार धुमण करें। धुमण करते समय इस बात का ध्यान रखें कि बीज में नमी 12 प्रतिशत से अधिक न हो अन्यथा बीज के अंकुरण पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। भण्डारगृह की समय–समय पर अच्छी प्रकार से सफाई भी करते रहें तथा फर्श, बोरों एवं दीवारों आदि पर मैलाथियान/डेल्टामेथ्रिन का छिड़काव 2–4 सप्ताह

के अंतराल पर विशेष रूप से वर्षा ऋतु में करते रहें। कीटनाशक दवाओं का इस्तेमाल करते समय मुंह पर मास्क अवश्य लगाएं। कीटनाशक एवं उर्वरक आदि भण्डारगृह में न रखें तथा ताले के अंदर बंद रखना चाहिए।

8. भण्डारण के लिए पैकिंग भी महत्वपूर्ण है। सामान्यतः अनाज, दलहन, तिलहन वाली फसलों के बीजों को जूट के बैग अथवा कपड़े के बैग में पैक करना चाहिए। फल, फूल व सब्जी के बीजों को एल्युमिनियम फोइॅल पॉउच, पॉलथीन बैग, पेपर बैग, कार्ड बोर्ड तथा बॉक्स में रखना उचित है, ताकि उनमें नमी की मात्रा स्थिर रहें। एल्यूमिनियम फोइॅल पॉउच में बीज पैक करने से पूर्व यह सुनिश्चित कर लें कि बीज में नमी 6 प्रतिशत से अधिक न हो अन्यथा बीज के खराब होने की संभावना अधिक रहती है। बीज को पैकिंग से पूर्व किसी फंफूदीनाशक जैसे थायरम या कैप्टॉफ आदि से 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करके ही बिक्री करें।

सारिणी 1: विभिन्न प्रकार के बीजों को क्षति पहुंचाने वाले कीट

क्र.सं.	बीज प्रकार	कीट प्रजाति
1.	अनाज फसलों के बीज जैसे गेहूं, चावल, जौ, ज्वार, मक्का आदि	सूंड वाली सुरसुरी (*साइटोफिलस ओरायजी*) घुन (*राइजोपरथा डोमिनिका*) अनाज का पतंगा (*साइटोट्रोगा सीरियलेला*) चावल की सुरसुरी (*ओरायजीफिलस सुरीनामेन्सिस*) गोदाम का पतंगा (*कैडरा कॉटेला*) मक्के का पतंगा (*प्लोडिया इंटरपंक्टेला*) चावल का पतंगा (*कोरसायरा सिफेलोनिका*) आटे का कीट (*ट्राइबोलियम कैस्टेनियम*) खपरा बीटल (*ट्रोगोडरमा ग्रेनेरियम*)
2.	दलहनी फसलों के बीज	ढोरा (चारा प्रजातियां)– (*कैलोसोब्रुकस मैकुलेटस, कै. चाइनेननसिस, कै. एनालिस* एवं *ब्रुकस पाइसोरम*) घुन (*राइजोपरथा डोमिनिका*) खपरा बीटल (*ट्रोगोडरमा ग्रेनेरियम*) चावल का पतंगा (*कोरसायरा सिफेलोनिका*) गोदाम का पतंगा (*कैडरा कॉटेला*)
3.	सब्जी फसलों के बीज क्रुसीफेरस (सरसों वर्गीय)	सिगरेट बीटल (*लैसियोडरमा सेरीकोर्नी*) चावल का पतंगा (*कोरसायरा सिफेलोनिका*) गोदाम का पतंगा (*कैडरा कॉटेला*) आटे का कीट (*ट्राइबोलियम कैस्टेनियम*)
	सोलेनौसियस (बैंगन, टमाटर एवं मिर्च वर्गीय) फसलों के बीज कैस्टेनियम	सिगरेट बीटल (*लैसियोडरमा सेरीकोर्नी*) चावल का पतंगा (*कोरसायरा सिफेलोनिका*) आटे का कीट (*ट्राइबोलियम कैस्टेनियम*)

सारिणी 2: विभिन्न फसलों के बीजों में सुरक्षित नमी स्तर

क्र.सं.	फसल	बीज नमी मात्रा (प्रतिशत)	
		सामान्य पात्र	नमी रोधक पात्र
1.	धान, गेहूं, जौ, जई, ज्वार, मक्की, बाजरा	12	8
2.	चना, उड़द, मूंग, अरहर, मसूर, लोबिया, सूरजमुखी	9	8
3.	सरसों, तिल, प्याज	8	5
4.	भिण्डी	10	8

5.	कपास	10	6
6.	बरसीम, ल्यूसरन (रिजका)	10	7
7.	मेथी, फूलगोभी, बन्दगोभी	7	5
8.	पालक	9	8
9.	गाजर	8	7
10.	मूंगफली	9	5
11.	मूली, शलगम	6	5
12.	बैंगन, मिर्च, टमाटर	8	6

किसानों के लिए बीज भण्डारण हेतु विभिन्न योजनाऐं निम्नलिखित है :–

कृषि, सहकारिता एवं किसान कल्याण विभाग (कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय) – बीज गाँव योजना (Seed Village Scheme)

बिन प्रकार	33 प्रतिशत (अनुसूचित जाति / अनुसूचित जनजाति)	25 प्रतिशत (अन्य किसान)	बिन क्षमता (क्विंटल)
पूसा बिन	3000 / – ₹ (अधिकतम)	2000 / – ₹ (अधिकतम)	20.0
मड बिन	1500 / – ₹ (अधिकतम)	1000 / – ₹ (अधिकतम)	10.0

पेस्टिसाइड लेबल – जानकारी एवं महत्त्व

इंदु चोपड़ा, नीरज पतंजलि एवं अनुपमा सिंह
कृषि रसायन संभाग,
भा.कृ.अनु.प–भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली–110012

कीटनाशक वर्तमान समय में खेती का एक अभिन्न अंग बनकर कृषि उत्पादकता बढ़ाने में प्रमुख भूमिका निभा रहे हैं। फिलहाल देश में 272 से ज्यादा पेस्टिसाइड उपलब्ध हैं। ज्यादातर किसान फसल सुरक्षा के लिए इन पेस्टिसाइड का प्रयोग तो करते हैं, लेकिन इनसे संबंधित सीमित जानकारी के कारण उन्हें अक्सर दुर्घटनाओं का सामना करना पड़ता है। चूँकि किसानों को पेस्टिसाइड के पैकेट पर दिए गए लेबल की पर्याप्त जानकारी नहीं होती इसलिए वे दुकानदार द्वारा अक्सर ठगी का शिकार बन जाते हैं। किसानों की सुविधा एवं सुरक्षा को ध्यान में रखकर कीटनाशक अधिनियम (1968) में सभी पेस्टिसाइड के लेबलिंग व पैकेजिंग को नियंत्रित करने के लिये कई प्रावधान दिए गए हैं परन्तु अधिकतर किसान पेस्टिसाइड लेबल एवं उसके साथ मिलने वाली लीफलेट के महत्व को नहीं समझते और उसे बेकार समझकर फेंक देते हैं। इस समस्या को ध्यान में रखते हुए किसानों से लेबल संबंधित जानकारी साँझा करने व् उसके महत्त्व को समझाने के उद्देश्य से यह लेख लिखा जा रहा है।

पेस्टिसाइड लेबल पर उपलब्ध जानकारी

- **सक्रिय घटक (Active ingredient)**: सक्रिय घटक किसी भी पेस्टिसाइड में मौजूद उस घटक को कहते हैं जो कि उस उत्पाद की वांछित पीड़कनाशी / कीटनाशी क्षमता के लिए उत्तरदायी होता है। कोई भी पेस्टिसाइड सूत्रण एक अथवा एक से अधिक सक्रिय घटकों से बना हो सकता है। सामान्यतः एक से अधिक सक्रिय घटकों के सूत्रण को पीड़कनाशीयों की प्रभाविकता को बेहतर करने के लिए बनाये जाते हैं जिसके उदाहरण निम्नलिखित हैं

व्यावसायिक नाम	सूत्रण	सक्रिय घटक (1)	सक्रिय घटक (2)	उपयोगिता
एनाकोंडा 404	(EC)	प्रोपेनोफोस (40%)	साइपरमेथरिन (4%)	कीटनाशी
सेफ्टी	(WP)	कार्बेन्डाजिम (12%)	मैंकोजेब (63%)	फफूंदनाशी
इरोस	(GR)	प्रेटीलाक्लोर (6%)	पायराजोस्ल्फ्युरोन इथाईल (0.15%)	खर–पतवारनाशी
लांसर गोल्ड	(SP)	एसिफेट	इमिडाक्लोप्रीड	कीटनाशी

- **व्यावसायिक नाम (Trade name)**: यह नाम किसी भी निर्माता कंपनी द्वारा अपने उत्पाद की पहचान के लिए दिया गया सामान्य नाम है। बाजार में एक ही सक्रिय घटक का कीटनाशी विभिन्न व्यावसायिक नामों में उपलब्ध हो सकता है।
- **सक्रिय घटक / घटकों का प्रतिशत (Concentration of active ingredient/ ingredients)**: किसी भी सूत्रण के प्रयोग से पहले यह जानकारी होना आवश्यक है कि उसमें सक्रिय घटक की मात्रा कितने प्रतिशत है। इसी के आधार पर फसल में किसी भी सूत्रण का प्रयोग करने की सलाह दी जाती है। उदाहरण के लिए यदि किसी सूत्रण में सक्रिय घटक की मात्रा 50% है तथा दूसरे सूत्रण में उसी घटक की मात्रा 10% है तो इसका अर्थ है कि समान पीड़क नियंत्रण के लिए पहले सूत्रण की तुलना में दूसरा सूत्रण 5 गुना अधिक मात्रा में प्रयोग करना होगा।
- **सूत्रण का प्रकार (Type of formulation)**: बाजार में उपलब्ध पेस्टिसाइड विभिन्न सूत्रणों में उपलब्ध होते हैं जिन्हें प्रयोग करने का तरीका एक दूसरे से अलग होता है। जैसे कि बीजोपचार, मिट्टी में डालने या स्प्रे करने के लिए अलग अलग सूत्रणों का प्रयोग किया जाता है। सामान्यतः सूत्रण का प्रकार सक्रिय

घटक/घटकों के प्रतिशत के साथ दिया गया होता है जिसे अंग्रेजी के दो अल्फाबेट (वर्णों) द्वारा दर्शाया जाता है जैसे EC, SC, SP, GR, ME, WG आदि।

- **उद्देश्य (Intented use)**: सभी पेस्टिसाइड किसी खास उद्देश्य जैसे कीटनाशक, खरपतवार नाशक, फफूंदनाशक, बीजोपचार आदि को ध्यान में रख कर बनाये जाते हैं। किसी भी पेस्टिसाइड को पैकेट पर लिखे हुए उद्देश्य के लिए ही प्रयोग करना चाहिए। उदहारण के लिए बीजोपचार के लिए निर्मित किसी भी पेस्टिसाइड को स्प्रे के लिए कभी भी इस्तेमाल न करें चाहे सक्रिय घटक समान ही क्यों न हो। इससे न केवल पैसे की बर्बादी होगी बल्कि फसल पर इसके दुष्प्रभाव होने की भी सम्भावना हो सकती है।
- **मात्रा (Quantity)**: बाजार में मिलने वाले किसी भी पेस्टिसाइड के डिब्बे/पैकेट पर उसमें मौजूद पेस्टिसाइड की मात्रा का लिखा होना अनिवार्य है। कभी भी बिना मात्रा लिखा हुआ पेस्टिसाइड का डिब्बा/पैकेट न खरीदें।
- **निर्माण की तिथि (Manufacturing date) एवं समाप्ति तिथि (Expiry date)**: अन्य सभी वस्तुओं की तरह ही पेस्टिसाइड के डिब्बे/पैकेट पर उसके निर्माण की तिथि एवं एक्सपायरी तिथि अनिवार्य रूप से लिखी होती है। कभी भी एक्सपायर हो चुके पेस्टिसाइड ना खरीदे क्यूँकि इस प्रकार के उत्पाद के प्रयोग से फसल सुरक्षा की गारंटी नहीं दी जा सकती।
- **निर्माता कंपनी का नाम एवं पता**: सभी पेस्टिसाइड के पैकेट पर निर्माता कंपनी का नाम व पता लिखा होना अनिवार्य है। जिस पेस्टिसाइड के पैकेट पर निर्माता कंपनी के बारे में यह जानकारी न लिखी हो वह पैकेट कभी ना खरीदें। जहां तक हो सके अच्छे स्थापित ब्रांड का ही पेस्टिसाइड खरीदें।
- **चेतावनी संकेत (Warning symbol)**: हर पेस्टिसाइड के डिब्बे पर एक दूसरे के विपरीत जुड़े हुए त्रिकोण किसी भी पेस्टिसाइड की विषाक्ता का पहला संकेत है। ऊपर वाले त्रिकोण में अंग्रेजी में चेतावनी वाक्य लिखा होता है जबकि नीचे वाले त्रिकोण में केवल रंग होता है जोकि लाल, पीला, नीला अथवा हरा हो सकता है। ओरल लिथल डोज वह मात्रा होती है जो मुंह के द्वारा शरीर में जाने पर प्राणघातक सिद्ध होती है। इसे सामान्यतः मिलीग्राम प्रति किलोग्राम (मि.ग्रा./कि.ग्रा.) में मापा जाता है। किसी भी पेस्टिसाइड की ओरल लिथल डोज जितनी कम होगी वह उतना ही विषैला होगा एवं उसके इस्तेमाल में अधिक सतर्कता की आवश्यकता होगी। नीचे दी गई सारणी में इन चेतावनी संकेतों को दर्शाया गया है:

चेतावनी संकेत	पहचान	विषाक्तता परिमाप	ओरल लिथल डोज (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)	उदाहरण
	ऊपर के त्रिकोण में अंग्रेजी के x के आकार में हड्डियो के ऊपर खोपड़ी रखी होती है एवं अंग्रेजी में POISON (जहर) लिखा होता है। नीचे का त्रिकोण लाल रंग का होता है	अत्यंत जहरीला	1–50	मोनोक्रोटोफोस, जिंक फोसफाईड
	ऊपर के त्रिकोण में अंग्रेजी में POISON (जहर) लिखा होता है। नीचे का त्रिकोण पीले रंग का होता है	अत्यधिक जहरीला	51–500	कार्बारिल, कुनालफोस
	ऊपर के त्रिकोण में अंग्रेजी में DANGER (खतरा) लिखा होता है। नीचे का त्रिकोण नीले रंग का होता है	औसत दर्जे का जहरीला	501–5000	मेलाथिओन, थिरम, ग्लायफोसेट
	ऊपर के त्रिकोण में अंग्रेजी में CAUTION (सावधान) लिखा होता है। नीचे का त्रिकोण हरे रंग का होता है	कम जहरीला	>5000	मेंकोजेब, ओक्सिफ्लोरफेन

- **बैच संख्या (Batch number)**: किसी भी पेस्टिसाइड की खेप को बैच संख्या के माध्यम से दर्शाया जाता हैद्य बिल लेते समय उस पर पेस्टिसाइड का नाम, कंपनी का नाम, खरीदने की तिथि के साथ बैच संख्या भी अवश्य लिखवा लें। यदि पेस्टिसाइड के नकली या निम्नतर होने का शक हो तो बैच संख्या द्वारा उसकी जांच करवाई जा सकती है।
- **विषाक्तता के लक्षण (Symptoms of toxicity)**: पेस्टिसाइड के पैकेट पर उसके सही ढंग से उपयोग न किये जाने पर होने वाली विषाक्तता के लक्षणों के बारे में भी बताया जाता है जैसे सिरदर्द, जी मिचलाना आदिद्य ऐसा कोई भी लक्षण महसूस होने पर तुरंत प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र से संपक्र करना चाहिए।
- **प्राथमिक उपचार (First aid)**: किसी भी पेस्टिसाइड को प्रयोग करते समय यदि विषाक्तता के लक्षण दिखाई पड़ें तो फौरन प्रयोगकर्ता को खुली हवादार स्थान (पेस्टिसाइड प्रयोग की गई जगह से दूर) पर ले जायेंद्य बिना देर किये डाक्टर की सलाह से प्राथमिक उपचार शुरू करवाएं। डाक्टर के पास जाते समय पेस्टिसाइड का डिब्बे अवश्य साथ ले जायें।
- **विषहर (Antidote)**: हर पेस्टिसाइड पर उसके विषहर की जानकारी दी होती है। विषाक्तता होने पर यह जानकारी जीवनदायी साबित हो सकती है।
- **प्रयोग के लिए निर्देश (Directions for use)**: प्रयोग से पहले लेबल पर इस्तेमाल संबंधी निर्देश अवश्य पढ़ लेद्य ये निर्देश पेस्टिसाइड से होने वाले दुष्प्रभावो को काफी हद तक कम करने में सहायक होते है।
- **भंडारण निर्देश (Storage instructions)**: कुछ पेस्टिसाइड के लिए भंडारण संबंधी निर्देश दिए होते है जैसे कि सीधी धूप में ना रखें आदि। भंडारण करने से पहले भंडारण से संबंधी निर्देश अवश्य पढ़ ले।
- **निस्तारण निर्देश (Disposal instructions)**: किसी भी पेस्टिसाइड के डिब्बे या पैकेट को ऐसे ही खुले में नहीं फेंकना या जलाना नहीं चाहिए। लेबल या लीफलेट पर दी गई विधि द्वारा ही पेस्टिसाइड के डिब्बे या पैकेट का निस्तारण करें।

निष्कर्ष: हालाँकि पेस्टिसाइड का प्रयोग फसल उत्पादन में सहायक है किन्तु इन्हें खरीदने और प्रयोग करने से पहले किसानों को इनके बारे में उचित जानकारी का अभाव बड़े नुकसान का कारण बन सकता है। इसलिए यह जरूरी कि किसान पेस्टिसाइड के पैकेट पर दिए गए लेबल के महत्त्व को समझे और इनका प्रयोग दिए गए निर्देशानुसार ही करे।

लेखकों से...

1. अपने तकनीकी एवं लोकप्रिय लेख हिन्दी में टाइप करवाकर भेजें।
2. रचना पृष्ठ के एक ओर उचित हाशिया और पंक्तियों के बीच स्थान छोड़कर सम्पादक, प्रसार दूत के पास यथा समय भेजें।
3. वर्ष 2015 से प्रसार दूत का अंक त्रैमासिक किया गया है। लेखकों से अनुरोध है कि प्रथम अंक के लिए प्रकाशनार्थ सामग्री 30 जनवरी, द्वितीय अंक 30 अप्रैल, तृतीय अंक 31 जुलाई तथा चतुर्थ अंक 31 अक्तूबर तक अवश्य भेज दें।
4. तकनीकी पर दी गई जानकारी की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी। रचना को प्रकाशित करने या न करने का पूरा अधिकार सम्पादक मंडल को होगा।

प्रसार दूत का प्रकाशन समय

प्रथम अंक मार्च, द्वितीय अंक जून, तृतीय अंक सितम्बर और चतुर्थ अंक दिसम्बर में प्रकाशित होगा।

वार्षिक शुल्क 80/- मनीऑर्डर द्वारा भेजें।

शुल्क और सामग्री भेजने एवं पत्रिका मंगवाने का पता

प्रभारी अधिकारी
कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)
भा.कृ.अ.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012
फोन: 011-25841670, 25846233, 25841039, 25803600
पूसा एग्रीकॉम: 1800 11 8989 (नि:शुल्क)

पाठकों से...

प्रसार दूत में प्रकाशित किसी भी तकनीकी के विषय में अंश और समाधान हेतु आपके पत्रों का स्वागत है। विषयों पर अधिक जानकारी के लिए लेखक से सीधे भी सम्पर्क कर सकते हैं।

किसानों से...

यदि आपकी खेती व पशु-पालन संबंधी कोई विशेष समस्या है, तो लिखकर भेजें। हम प्रसार दूत के माध्यम से उसका समाधान आप तक पहुंचाएंगे।

अन्त में ...

आपकी खुशहाली ही हमारी सफलता है।

प्रो. एम एस स्वामीनाथन पुस्तकालय
निदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012 द्वारा प्रकाशित तथा
मैसर्स एम एस प्रिंटर्स, सी-108/1 बैक साइड नारायणा इंडस्ट्रीयल एरिया, फेस-1, नई दिल्ली-110028, द्वारा मुद्रित
फोन: 7838075335, 9899355565, 9899355405,